जैनग्रन्थरत्नाकरस्थ- रत्न १० वां.

ॐ

श्रीमन्नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचित

द्रव्यसंग्रह.

जिसको

सर्वसाधारण जैनी विद्यार्थियोंके हितार्थ

सुजागढ़निवासी

पन्नालाल बाकलीवालने

प्राकृतसंस्कृतके अन्वय व अन्वयानुगत

हिन्दी-मराठी-अर्थ-भावार्थसहित

बनाया

और

मुम्बयीस्थ-

जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालयने

निर्णयसागरमुद्रणालयमें छपाकर

प्रसिद्ध किया.

वीरसंवत् २४३२ । ई० सन १९०६ ।

द्वितीयावृत्ति] [मूल्य ६ आने ।

प्रस्तावना.

यह **द्रव्यसंग्रह** ग्रन्थ श्रीमन्नृपतिवर चामुण्डरायके समयमें (अंगरेजी सन १९३५ के अनुमानमें) श्रीमदाचार्य्यवर्य **श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिक महाराजने**[1] बनाया था. किन्तु इसके संस्कृतटीकाकार **श्रीमद्ब्रह्मदेवव्रती** इसकी पीठिकामें (प्रस्तावनामें) लिखते हैं कि "प्रथम तो आचार्यमहाराजने केवलमात्र षड्विंशति गाथाका **लघुद्रव्यसंग्रह** बनाया था. तत्पश्चात् विशेष-तत्त्वपरिज्ञानार्थ ३२ गाथा बढाकर ५८ गाथाका यह **बृहद्द्रव्यसंग्रह** बनाकर इसमें मुख्य तीन अधिकार (अध्याय) रक्खे" **प्रथम अधिकार** २७ गाथामें पूर्ण हुवा है. जिसमें षड्द्रव्य पंचास्तिकायका सरलताके साथ संक्षिप्तस्वरूप व-र्णन किया गया है. **द्वितीयाधिकार** ११ गाथाका है जिसमें संक्षेपताके साथ सप्ततत्त्वनवपदार्थोंका स्वरूप कहा गया है. अन्तका **तृतीय अधिकार** २० गाथामें पूर्ण हुवा है. जिसमें निश्चयव्यवहाररूपमोक्षमार्गका व तत्सम्बंधी ध्यानादिक आनुषङ्गिकविषयोंका वर्णन किया गया है. इसकारण इसग्रन्थको "**जैनधर्मामृतसारसंग्रह**" भी कह सक्ते हैं क्योंकि इसमें जैनमतसम्बन्धी आवश्यकीय विषयोंका सारसंग्रह प्रायः सब आगया है ।

यद्यपि इस ग्रंथपर संस्कृत व भाषा तथा छन्दोबद्ध अनेक टीकायें बनी हुई हस्तलिखित मोजूद हैं तथा दो तीन टीका हिन्दी मराठीमें छपी भी हैं. परन्तु वे व प्राचीन प्रक्रियानुसार तथा क्लिष्ट होनेके कारण तथा अतिशय अशुद्ध होनेके कारण आजकालके स्तोकबुद्धिधारक परीक्षोत्तीर्णेच्छुक विद्यार्थियोंको किसी प्रकार भी उपयोगी न समझ सूरत निवासी श्रेष्ठिवर्य्य मोतिचन्दजी हिराचंदजीके सुपुत्र कुवर **प्रेमचंदजी जोंहरीने** अनुरोधपूर्वक प्रेरणा कियी कि " इस द्रव्यसं-ग्रहका संस्कृत प्राकृत अन्वय और अन्वयानुगत पदोंका सुगम अर्थबतानेली भा-षाटीका बनादो तो विद्यार्थियोंका बडा उपकार हो" इसकारण मैंनें स्वपरहित विचार कई टीकाओंकी व नन्दिनीग्रामनिवासी मित्रवर्य्य श्रीयुत **पण्डित कलापा भरमापा निटवेजीकी** सहायतासे अपनी लघुमत्यनुसार जहाँ तक बना मूल-पाठको शुद्ध करके सरलताके साथ अन्वय तथा पास होनेकी कुंजी आदि भी लिखदी है । इसके अतिरिक्त सोलापूरनिवासी श्रीमान्सेठ माणिकचन्द हीराचंद-

---

१ इन आचार्य महाराजने श्रीमद्गोमट्टसार त्रिलोकसारादि बडे २ ग्रंथ बनाये हैं.

दोशीकी प्रेरणासे महाराष्ट्रदेशीय जैनी भाइयोंके हितार्थ श्रीमान् पंडित **कालापा भरमापा** निटवेजीसे मराठी अर्थ भी लिखवादिया है. अर्थात् जहांतक मुझसे बना सर्वांगसुन्दर करनेमें त्रुटी नहिं कियी है. परन्तु जब समस्त जैनपाठशालाओं-के प्रबन्धकर्ता व पाठक महाशय इसको सादर स्वीकार करके शुद्धतापूर्वक वि-द्यार्थियोंको पढावें और उनको यह ग्रन्थ किंचिन्मात्र भी सहायक हो जाय तो यह परिश्रम सफल समझा जायगा।

दूसरे—इस ग्रन्थके संस्कृतटीकाकारोंने प्रसंगोपात्त उदाहरणार्थ कहीं २ अ-न्यान्य ग्रन्थोंकी गाथायें लिखकर उस विषयको स्पष्ट किया है. परन्तु कई भा-षाकारोंने उन गाथाओंको मूलग्रन्थमें सामिल करके मूलगाथा ५८ की जगहँ ६०—६२—६५ गाथा तक की टीका की है. और मूलपाठमें लिखकर ग्रन्थको बढा दिया है. परन्तु मैनें उन गाथाओंको मूलपाठमें स्थान न देकर टिप्पणीकी जगहँ लिखदी हैं और आवश्यकीय गाथाओंका अन्वय भावार्थ भी लिख दिया है सो इसप्रकार करनेमें यदि कोई दोष होगया हो तो आशा है कि मुझे बालक जान पंडित महाशय क्षमा केरेंगे।

तीसरे—अल्पज्ञताके कारण मूलपाठ शोधने व भाषानुवाद करनेमें भी कहीं २ पर विपरीतार्थ होनेकी संभावना है. सो विद्वानों व पाठक महाशयोंको कहीं-पर विपरीतता भासै तो अपने स्वाभाविक क्षमागुणकी प्रधानतासे क्षमा करके शुद्धतापूर्वक पढें पढावैंगे तथा थोडासा परिश्रम सहन कर एक पत्रद्वारा मुझे भी सूचित कर देवैंगे तो वह दोष द्वितीयावृत्तिमें मार्जन कर दिया जायगा. अलमति विद्वज्जनवर्य्येषु ॥

नांदणी जि० कोल्हापूर ता० २० जून सन १९००	जैनीभाइयोंका हितैषी दास **पन्नालाल बा० दि० जैन**

द्वितीयावृत्तिकी सूचना.

इस आवृत्तिमें मूल प्राकृत गाथाके नीचें संस्कृत छाया बढा कर यत्रतत्र अ-शुद्धियें थीं वे परिमार्जन करदी गई हैं।

३–४–१९०६.

पन्नालाल जैन.

पाठक महाशयोंसे प्रार्थना.

द्रव्यसंग्रहके पढानेकी रीति.

(१) यह द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ बहुत कठिन है. इसकारण पाठक महाशयोंको चाहिये कि, किसी विशेषज्ञानीकी सहायतासे निश्चय व्यवहारादि नयोंके स्वरूप-सहित आद्योपान्त पढ लेवैं. जबतक आद्योपान्त न पढ लें और न समझ लें तबतक किसीको भी यह ग्रन्थ पढाना प्रारंभ नहिं करना चाहिये.

(२) तेजबुद्धिवाले विद्यार्थियोंके सिवाय प्रतिदिन सबको एक ही गाथा पढानी चाहिये. प्रथम तो गाथाका मूलपाठ शुद्धतापूर्वक पढाकर अपने सामने पांचसातबार विद्यार्थियोंके मुखसे सुन लेना चाहिये. जब उनको मूलगाथाका पाठ शुद्ध आ जाय तब उसकी संस्कृत छाया पढा देवैं तत्पश्चात् ( ) ऐसे काउंसमें बाईं तरफ काले अक्षरोंमें छपे हुये पदोंके क्रमसे मूलगाथापरसे दो चार बार अन्वय बता देवैं. फिर काउंसमें दहनी तरफ जो प्राकृतपदकी छायारूप संस्कृत पदोंमें अन्वय लिखा है वह प्रत्येक प्राकृत पदके साथ२बुलवाकर उनका हिंदी अर्थ बता देवें और प्राकृत संस्कृत और हिन्दी तीनों पदोंको साथ२याद करनेको कह देवैं. जो सुनाते समय प्राकृतपदका अर्थ संस्कृतमें संस्कृतका अर्थात् दोनोंका अर्थ हिन्दीमें कह दिया करें. बहुतसे महाशय मूलगाथा और उसका अन्वय जुदा जुदा कंठाग्र कराके उसका अर्थ या भावार्थ जुदा ही याद करा देते हैं. पद पद का जुदा अर्थ नहिं पढाते तथा न याद कराते. सो ऐसा कदापि नहिं चाहिये. किन्तु विद्यार्थियोंको जो ग्रन्थ पढाया जावे पद२का भिन्न भिन्न पर्य्यायरूप शब्दोंमें अर्थ बताकर पढाना चाहिये. जिससे वे पद आगेके किसी पाठमें या अन्य ग्रन्थमें आवैंगे तो उनका अर्थ वे अपने आप समझ जाया करैंगे. इस कारण पदपदका अर्थ भिन्न भिन्न कंठाग्र कराके पढाना चाहिये. जब समस्त विद्यार्थियोंको पदपदका अर्थ मालूम हो जाय तब उस गाथाका भावार्थ तथा १—२ आदिका अंक देकर जो अर्थ टिप्पणीमें लिखा है वह भी सरलताके साथ समझा देना चाहिये. और मूल, अन्वय, पदपदका अर्थ भावार्थ इतनी बातें कंठाग्र होना चाहिये. पहिले दिन जो गाथा पढाई जाय उसको दूसरे दिन

बनारसीविलास ।

और

ग्रंथकर्ता कविवर **बनारसीदासजीका** बृहत्

जीवनचरित्र ।

बहुत थोड़े लोक ऐसें होंगे, जिन्होंने आगरा निवासी स्वर्गीय कविवर **बनारसीदासजी**का नाम न सुना हो । आपकी कविता ऐसी मनोरम और चित्ताकर्षक है कि, एकवार पढकर फिर छोडनेको जी नहीं चाहता, निरंतर पढते रहना ही सुहाता है । भाषासाहित्यमें आपसरीखी सुंदर रसालंकारादि काव्यके अंगोंसे परिपूर्ण कविता बहुत थोड़ी है । जिन्होंने नाटकसमयसारग्रंथकी अध्यात्मरससे सराबोर कविताका पाठ किया है, वे जानते हैं कि, आप कैसे प्रतिभाशाली कवि थे । आपके बनाये हुए कई ग्रन्थ हैं, उनमेंसे अभी तक नाटकसमयसारके सिवाय और कोईभी ग्रंथ मुद्रित नहीं हुआ था । इसलिये हमने बडे परिश्रम और अर्थव्ययसे आपका यह दूसरा ग्रंथ **बनारसीविलास** छपाके तैयार किया है । यह ग्रन्थ बनारसीदासजीकृत जिनसहस्रनाम, सूक्तमुक्तावली (संस्कृत सहित), ज्ञानबावनी, वेदनिर्णयपंचासिका, अध्यात्मफाग, परमार्थवचनिका उपादान निमित्तकी चिट्ठी, अध्यात्मपदसंग्रह आदि—५९ **ग्रंथरत्नोंका** (विषयोंका) संग्रह है । इस संग्रहसमूहको ही **बनारसीविलास** कहते हैं । इस ग्रन्थके प्रारंभमें ११३ पृष्ठोंमें ग्रन्थकर्ता कविवर बनारसीदासजीका सविस्तर-**जीवनचरित्र** दिया गया है । हिन्दीमें इतना बडा और इतना विश्वस्त जीवनचरित्र आजतक किसी भी कविका प्रकाशित नहीं हुआ है । इसे पढकर पाठक अवश्य ही प्रसन्न होंगे । इससे ग्रन्थकर्ता और उनके समयका इतिहास ही नहीं विदित होता है परन्तु अनेक अनुकरणीय शिक्षायें भी प्राप्त होती हैं । प्रत्येक साहित्यप्रेमी तथा स्वाध्यायनिरत जैनीभाइयोंको इस ग्रंथका संग्रह अवश्य करना चाहिये । जगत्प्रसिद्ध निर्णयसागरके सुंदर टाईपमें चारों तरफ वेल लगाकर बडीसुंदरतासे इसकी तयारी हुई है, लगभग ४०० पृष्ठोंमें यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है । सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये मूल्य भी सिर्फ १॥) रक्खा है. डांकखर्च ≡) जुदा पड़ेगा ।

मिलनेका पता–पन्नालाल जैन,

मालिक–जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय.

पो. गिरगांव (मुम्बई.)

ॐ

श्रीवीतरागाय नमः ।

द्रव्यसंग्रहः सान्वयार्थः ।

दोहा ।

कहे द्रव्य जीवादि जिन, वंदे जिन्हें सुरेश ।
तिन जिनवर वृषभेशको, नाऊं सीस हमेश ॥ १ ॥

मूलग्रन्थकर्ताका मङ्गलाचरण.

प्राकृतगाथा ।

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया ।

जीवं अजीवं द्रव्यं जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम् ।
देवेन्द्रवृन्दवन्द्यं वन्दे तं सर्वदा शिरसा ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(**जेण**=येन) जिस (**जिणवरवसहेण**=जिनवरवृषभेण) ऋषभ जिनेश्वरने (**जीवमजीवं**=जीवम् अजीवम्) जीव और अजीव (**दव्वं**=द्रव्यं) द्रव्यको (**णिद्दिट्ठं**=निर्दिष्टं) निर्देश किया अर्थात् वर्णन किया है और (**देविंदविंदवंदं**=देवेन्द्रवृन्दवन्द्यम्) जो देवोंके इन्द्रसमूहकर वंदनीय है (**तं**=तम्) उस आदिनाथ भगवान्को (**सव्वदा**=सर्वदा) सदैव (**सिरसा**=शिरसा) मस्तक नमाकर (**वंदे**=वन्दे) नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस ऋषभनाथ भगवान्ने जीव अजीव द्रव्योंका स्व-

रूप वर्णन किया है, और जो शतइन्द्रनकर वन्दनीक है उसको मैं नेमिचन्द्रसैद्धान्तिक मस्तक नवायकर नमस्कार करता हूं.

१ मराठीः—ज्या जिनश्रेष्ठ अशा वृषभनाथ तीर्थकरानें जीव व अजीव द्रव्यांचें स्वरूप वर्णिलें आहे, आणि ह्मणूनच जो शंभर इंद्रांकडून पूजिला जाण्यास योग्य झाला आहे त्यास मी मस्तक नम्र करून सर्वदा नमस्कार करितों.

जीवद्रव्यका स्वरूप.

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भुत्ता[2] संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

जीवः उपयोगमयः अमूर्त्तिः कर्त्ता स्वदेहपरिमाणः ।
भोक्ता संसारस्थः सिद्धः सः विस्रसा ऊर्द्धगतिः ॥ २ ॥

अन्वयार्थ–(**जीवो**=जीवः) जो प्राणोंकर जीवै (**उवओगमओ**=उपयोगमयः) उपयोगमयी (**अमुत्ति**=अमूर्तिः) मूर्तिरहित (**कत्ता**=कर्ता) कर्मोका कर्त्ता (**सदेहपरिमाणो**=स्वदेहपरिमाणः) नामकर्मके उदयसे प्राप्तहुए अपने शरीरके बराबर [छोटा या बड़ा] रहनेवाला (**भुत्ता**=भोक्ता) कर्मफलका भोगनेवाला (**संसारत्थो**=संसारस्थः) संसारी (**सिद्धो**=सिद्धः) सिद्ध (**विस्ससोड्ढगई**=विस्रसा उर्द्धगतिः) स्वभावसे ऊर्द्धगतिवाला हो (**सो**=सः) वह जीव है ॥ २ ॥

---

(१) **भवणालय चालीसा विंतरदेवाण होंति बत्तीसा ।**
कप्पामर चउवीसा चंदो सूरो णरो तिरओ ॥ १ ॥

[यह गाथा मूलग्रंथकी नहीं है]

(२) '**भोत्ता**' ऐसा भी पाठ है.

भावार्थ–ये नव प्रकार जिसमें पाये जांय वही जीव है.

२ मराठीः—ज्याला चेतना आहे तो जीव. तो, उपयोगमय, अमूर्ति, कर्मांचा कर्त्ता, स्वदेहपरिमाण (ज्या ज्या जन्मांत जितक्या प्रमाणाचा देह प्राप्त होतो त्याच प्रमाणानें मोठा व लहान होऊन असणारा) कर्मांचीं शुभाशुभ फळें भोगणारा, संसारी ह्मणजे त्रस व स्थावर इत्यादि पर्याय धारण करून संसारांत फिरणारा, सगळ्या कर्मांचा समूळ नाश झाल्यावर सिद्ध होणारा आणि सिद्ध झाल्यावर स्वभावानेंच ऊर्ध्व ह्मणजे त्रैलोक्यशिखरापर्यंत गमन करणारा असा आहे.

प्राणोंकी अपेक्षा जीवका लक्षण.

तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स॥३॥

त्रिकाले चतुःप्राणाः इन्द्रियं बलं आयुः आनप्राणः च ।
व्यवहारात् सः जीवः निश्चयनयतः तु चेतना यस्य ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ–(**ववहारा**=व्यवहारात्) व्यवहारनयमे (**तिक्काले**=त्रिकाले) तीनकालमें अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालमें (**इंदिय**=इन्द्रियम्) इन्द्रिय (**वलं**=बलम्) बल (**आउ**=आयुः) आयुः (**य**=च) और (**आणपाणो**=आनप्राणः) श्वासोच्छ्वास [एते] ये (**चदुपाणा**=चतुःप्राणाः) चार प्राण [सन्ति] हैं. (**दु**=तु) पुनः (**णिच्चयणयदो**=निश्चयनयतः) निश्चयनयसे (**जस्स**=यस्य) जिसके (**चेदणा**=चेतना) चेतनारूप एक ही प्राण है (**सो**=सः) वह (**जीवो**=जीवः) जीव है ॥ ३ ॥

भावार्थ—व्यवहारनयकी अपेक्षा; पांच इंद्रिय[1], तीन बल[2], आयुः और श्वासोच्छ्वास इसप्रकार दशप्राण जिसके हों वह जीव है. और निश्चयनयसे जिसको चेतना (स्वस्वरूप और परस्वरूपका ज्ञान) है वह जीव है.

३ मराठीः—व्यवहारनयाच्या अपेक्षेनें—ज्याला इंद्रिय, बळ, आयुष्य आणि श्वासोच्छ्वास हे चार प्राण आहेत तो जीव होय. [स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु आणि श्रोतृ हीं पांच इंद्रियें होत. बळ तीन प्रकारचें आहे. मनोबल, वचनबल आणि कायबल.] निश्चयनयाच्या अपेक्षेनें—ज्याला चेतना [स्वस्वरूप आणि परस्वरूप याचें ज्ञान] आहे तो जीव होय.

उपयोग तथा दर्शनोपयोगके भेद.

उवओगो दुवियप्पो दंसण णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥

उपयोगः द्विविकल्पः दर्शनं ज्ञानं च दर्शनं चतुर्द्धा ।
चक्षुः अचक्षुः अवधिः दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(**उवओगो**=उपयोगः) उपयोग (**दुवियप्पो**=द्विविकल्पः) दो प्रकारका है (**दंसणं**=दर्शनं) एक तो दर्शनोपयोग (**णाणं**=ज्ञानं) दूसरा ज्ञानोपयोग (**च**=च) और (**दंसणं**=दर्शनं) दर्शनोपयोग (**चदुधा**=चतुर्धा) चार प्रकारका है (**चक्खु**=चक्षुः)

---

(१) स्पर्शन रसना नासिका चक्षु और कान ये पांच इंद्रिय हैं.
(२) मनोबल कायबल वचनबल. ये तीन बल हैं.

चक्षुर्दर्शन (**च**=च) और (**अचक्खु**=अचक्षुः) अचक्षुर्दर्शन (**ओही**=अवधिः) अवधिदर्शन [**अध**=अथ] इनके अतिरिक्त (**केवलं**=केवलं) केवल भी (**दंसणं**=दर्शनं) दर्शनोपयोग (**णेयं** =ज्ञेयं) जानना चाहिये ॥ ४ ॥

४ मराठीः—उपयोग दोन प्रकारचा आहे. एक दर्शनोपयोग आणि दुसरा ज्ञानोपयोग. चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन आणि केवलदर्शन असे दर्शनोपयोगाचे चार भेद आहेत.

ज्ञानोपयोगके आठ भेद.

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥

ज्ञानं अष्टविकल्पं मतिः श्रुतः अवधिः अज्ञानज्ञानानि ।
मनःपर्ययः केवलं अपि प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(**मदि**=मतिः) मति (**सुद**=श्रुतः) श्रुत (**ओही**=अवधिः) अवधि ये तीन (**अणाणणाणाणि**=अज्ञानज्ञानानि) मिथ्या ज्ञान और सम्यग्ज्ञान दोनों प्रकारके हैं अर्थात् कुमति कुश्रुत कुअवधि सुमति सुश्रुत सुअवधि ऐसे छह प्रकारके हैं (**अवि**=अपि) और (**मणपज्जय**=मनःपर्ययः) मनःपर्यय तथा (**केवलं**=केवलं) केवल ज्ञान इस प्रकार (**णाणं**=ज्ञानम्) ज्ञानोपयोग (**अट्ठवियप्पं**=अष्टविकल्पं) आठ भेद रूप है. (**च**=च) और फिर यह ज्ञानोपयोग (**पच्चक्खपरोक्खभेयं**=प्रत्यक्षपरोक्षभेदं) प्रत्यक्ष परोक्ष भेदसे दो प्रकारका है ॥ ५ ॥

भावार्थ—ज्ञानोपयोग आठ प्रकारका है और ये ही आठों प्रत्यक्ष परोक्षके भेदसे दो प्रकारके भी होते हैं।

५ मति, श्रुत, अवधि हीं तीन ज्ञानें व मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान व विभंगावधि हीं तीन अज्ञानें मिळून सहा व मनःपर्यय आणि केवल मिळून आठ भेद ज्ञानाचे आहेत. याचेच आणखी प्रत्यक्ष व परोक्ष असे दोन भेद आहेत.

जीवका व्यवहार निश्चयलक्षण.

अट्ठचदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥

प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञानके भेद.

(१) **मइ सुय परोक्खणाणं ओही मण होइ वियलपच्चक्खं।**
केवलणाणं च तहा अणोवमं होइ सयलपच्चक्खं ॥ १ ॥
मतिः श्रुतः परोक्षज्ञानं अवधिः मनः भवति विकलप्रत्यक्षम्।
केवलज्ञानं च तथा अनुपमं भवति सकलप्रत्यक्षम् ॥ १ ॥

अन्वयार्थ-(**मइ**=मतिः) मतिज्ञान (**सुय**=श्रुतः) श्रुतज्ञान ये दो (**परोक्खणाणं**=परोक्षज्ञानम्) परोक्षज्ञान हैं. (**ओही**=अवधिः) अवधि ज्ञान(**च**=च) और (**मण**=मनः) मनःपर्ययज्ञान (**वियलपच्चक्खं**=विकलप्रत्यक्षम्) एकदेशप्रत्यक्ष (**होइ**=भवति) है. (**तहा**=तथा) तथा (**केवलणाणं**=केवलज्ञानम्) केवलज्ञान जो है सो (**अणोवमं**=अनुपमं) जिसकी बराबरीका कोई भी न हो ऐसा (**सयलपच्चक्खं**=सकलप्रत्यक्षं) सर्वदेशप्रत्यक्ष (**होइ**=भवति) है.

भावार्थ—मति-श्रुतज्ञान तो परोक्षज्ञान हैं अवधि-मनःपर्ययज्ञान एकदेश (थोड़ा) प्रत्यक्ष हैं. और केवलज्ञान समस्तपदार्थोंको स्पष्टतया जाननेवाला सकल प्रत्यक्ष है. [यह गाथा मूल ग्रन्थकी नहीं है.]

मराठीः—मति आणि श्रुत हीं दोन्हीं परोक्षज्ञानें होत. अवधि आणि मनःपर्यय हीं दोन्हीं विकलप्रत्यक्ष, व निरुपम असें केवलज्ञान हें सकल प्रत्यक्ष होय।

अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्यं जीवलक्षणं भणितम् ।
व्यवहारात् शुद्धनयात् शुद्धं पुनः दर्शनं ज्ञानम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ– (**जीवलक्खणं**=जीवलक्षणम्) जीवका लक्षण (**ववहारा**=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (**अट्ठचदुणाणदंसण**= अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने) आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन (**सामण्णं**=सामान्यम्) साधारण अर्थात् सर्वसाधारणकी समझमें आजावे ऐसा (**भणियं**=भणितम्) कहा गया है. (**पुण**=पुनः) और (**सुद्धणया**=शुद्धनयात्) शुद्ध निश्चयनयसे (**शुद्धं**=शुद्धम्) शुद्ध (**दंसणं**=दर्शनम्) दर्शन और (**णाणं**=ज्ञानम्) ज्ञान ही जीवका लक्षण है ॥ ६ ॥

६ मराठीः—आठ प्रकारचें ज्ञान आणि चार प्रकारचें दर्शन हें जीवाचें सामान्य लक्षण सांगितलें आहे. व शुद्ध ह्मणजे निश्चयनयाच्या अपेक्षेनें शुद्धदर्शन व शुद्धज्ञान हेंच जीवाचें लक्षण जाणावें.

जीवका अमूर्त्तित्ववर्णन.

वण्णरस पंच गन्धा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो॥ ७ ॥

वर्णरसाः पञ्च गन्धौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे ।
नो सन्ति अमूर्तिः ततः व्यवहारात् मूर्तिः बन्धात् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ–(**णिच्चया**=निश्चयात्) शुद्ध निश्चयनयसे (**जीवे**=जीवे) जीवद्रव्यमें (**वण्णरस पंच**=वर्णरसाः पञ्च) पांच वर्ण, पांच प्रकारके रस (**दो**=द्वौ) दो प्रकारके (**गंधा**=गन्धौ) गंध और (**अट्ठ फासा**=अष्टौ स्पर्शाः) आठ प्रकारके स्पर्श (**णो**=नो)

नहीं (**संति**=सन्ति) हैं. (**तदो**=ततः) तिस कारणसे जीव (**अमुत्ति**=अमूर्तिः) अमूर्तिक है. और (**ववहारा**=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (**बंधादो**=बन्धात्) कर्मबन्धसहित होनेके कारण (**मुत्ति**=मूर्तिः) मूर्तिक है ।

भावार्थ–जीवद्रव्यमें पांच प्रकारके (श्वेत, पीत, नील, अरुण, कृष्ण.) वर्ण; पांच प्रकारके (तिक्त, कटुक, कषायला, खट्टा, मीठा.) रस; दो प्रकारके (सुगंध, दुर्गंध.) गंध; और आठ प्रकारका (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर, हलका, भारी.) स्पर्श; इनमेंसे एक भी गुण नहीं है. इस कारण निश्चयनयसे (वास्तवमें) तो जीव अमूर्तिक है. परंतु कर्मबंध (शरीरादि) सहित होनेसे व्यवहारनयसे मूर्तिक भी कहा जाता है ॥ ७ ॥

७ मराठीः—**श्वेत, पीत वगैरे पांच प्रकारचे वर्ण; तिक्त, कटु वगैरे पांच प्रकारचे रस; सुगंध, दुर्गंध; शीत, उष्ण वगैरे आठ प्रकारचे स्पर्श; हे सर्व गुण जीवाच्या ठिकाणीं निश्चयतः ह्मणजे वस्तुतः नाहींत ह्मणून तो अमूर्तिक आहे. पण, व्यवहारनयाच्या अपेक्षेनें कर्मबंधामुळें तो मूर्तिक आहे.**

कर्त्ता अधिकारका वर्णन.

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणम् ॥ ८ ॥

पुद्गलकर्मादीनां कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ–(**ववहारदो दु**=व्यवहारतस्तु) व्यवहारनयसे तो (**आदा**=आत्मा) जीव (**पुग्गलकम्मादीणं**=पुद्गलकर्मादीनाम्)

ज्ञानावरणादि व शरीरादि कर्मोंका (**कत्ता**=कर्त्ता) कर्त्ता है. और (**णिच्चयदो**=निश्चयतः) अशुद्ध निश्चयनयसे (**चेदणकम्माण**=चेतनकर्मणाम्) रागादिक चेतन भावोंका कर्त्ता है. परन्तु (**सुद्धणया**=शुद्धनयात्) शुद्ध निश्चय नयसे केवल मात्र (**सुद्धभावाणं**=शुद्धभावानाम्) शुद्ध चैतन्य भावोंका [शुद्धज्ञानदर्शनका] ही कर्त्ता है ॥ ८ ॥

८ मराठीः—हा आत्मा, व्यवहारनयाच्या अपेक्षेनें ज्ञानावरण व शरीर वगैरे कर्मांचा कर्त्ता आहे. अशुद्ध निश्चयनयानें राग, द्वेष वगैरे जे अशुद्ध चेतनभाव, त्यांचा कर्ता आहे. आणि शुद्ध नयानें शुद्ध भावांचा ह्मणजे चैतन्य स्वरूपाचाच कर्ता आहे.

भोक्ता अधिकारका वर्णन.

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्चयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्मफलं प्रभुङ्क्ते ।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ–(**आदा**=आत्मा) जीव (**ववहारा**=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (**पुग्गलकम्मफलं**=पुद्गलकर्मफलम्) पौद्गलिक कर्मोंका फल (**सुहदुक्खं**=सुखदुःखम्) सुख अथवा दुःख (**पभुंजेदि**=प्रभुङ्क्ते) भोगता है. और (**णिच्चयणयदो**=निश्चयनयतः) शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा (**खु**=खलु) नियमसे (**आदस्स**=आत्मनः) अपने (**चेदणभावं**=चेतनभावं) शुद्ध दर्शनज्ञानोपयोगको भोगता है ॥ ९ ॥

९ मराठीः—हा आत्मा, व्यवहारनयानें पुद्गलांच्या कर्मांचें जें फळ ह्मणजे सुख किंवा दुःख, त्याचा भोक्ता आहे. आणि निश्चयनयानें शुद्ध चैतन्यस्वरूपाचा भोक्ता आहे.

स्वदेहपरिमाणाधिकार.

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा१०

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पाभ्यां चिदात्मा ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चनयतः असंख्यदेशः वा॥१०॥

अन्वयार्थ—(**ववहारा**=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (**चेदा**=चिदात्मा) चित्स्वरूप जीव (**उवसंहारप्पसप्पदो**=उपसंहारप्रसर्पाभ्याम्) शरीरनामकर्मजनित संकोचविस्तारगुणके कारण (**असमुहदो**=असमुद्घातात्) समुद्घातके सिवाय (**अणुगुरुदेहपमाणो**=अणुगुरुदेहप्रमाणः) छोटे या बडे प्राप्त हुए शरीरके प्रमाण ही रहता है. (**वा**=वा) और (**णिच्चयणयदो**=निश्चयनयतः) निश्चयनयसे तो (**असंखदेसो**=असंख्यदेशः) लोककी बराबर असंख्य प्रदेशी है ॥ १० ॥

भावार्थ—निश्चयनयसे तो जीव लोककी बराबर असंख्यात प्रदेशवाला है. परन्तु सात प्रकारके समुद्घातके सिवाय व्यवहारनयकी अपेक्षा नामकर्मके उदयसे जितना बडा शरीर पाता है उसके प्रमाण ही रहनेवाला कहा जाता है ॥

---

१ आकाशके जितने क्षेत्रको पुद्गलका एक अविभागी परमाणु रोकता है उतने आकाशके खंडको एक प्रदेश कहते हैं. (देखो २७ वीं गाथा में)
२ कषाय वेदनादि सात कारणोंसे जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर होते हैं उसको समुद्घात कहते हैं.

१० मराठीः—हा आत्मा, व्यवहारनयाच्या अपेक्षेनें, समुद्घातांची[1] अवस्था सोडून–इतर अवस्थेंत, उपसंहार ह्मणजे संकोच व प्रसर्प ह्मणजे विस्तार पावण्याची शक्ति त्याच्या ठिकाणीं असल्यामुळें; "कर्मोदयाप्रमाणें प्राप्त झालेल्या" त्यात्या सूक्ष्म व स्थूल शरीराच्या प्रमाणाचा होतो. आणि निश्चयनयानें लोकाकाशाबरोबर असंख्यप्रदेशी[2] आहे.

संसारीजीवाधिकार ३ गाथामें.

पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ११

पृथिविजलतेजोवायुवनस्पतयः त्रिविधस्थावरेकेन्द्रियाः ।
द्वित्रिचतुःपञ्चाक्षाः त्रसजीवाः भवन्ति शङ्खादयः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ–(**पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी**=पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः) पृथिवीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय ये सब (**विविहथावरेइंदी**=विविधस्थावरेकेन्द्रियाः) अनेकप्रकारके स्थावर एकेंद्रिय[3] संसारी जीव हैं. और (**संखादी**=शङ्खादयः) शंखादिक (**विगतिगचदुपंचक्खा**=द्वित्रिचतुःप-

---

१ कषाय, वेदना वगैरे सात कारणांनीं, जीवाचे प्रदेश शरीराच्या बाहेरहि पसरत असतात त्याला समुद्घात ह्मणतात.

२ अविभागी ह्मणजे ज्याचा पुनः विभाग होत नाहीं असा अत्यंत सूक्ष्म जो पुद्गल परमाणु, तो आकाशाच्या जितक्या क्षेत्रास रोकतो तितक्या आकाशाच्या खंडास एक प्रदेश ह्मणतात.

३ एक मात्र स्पर्शन (त्वक्) इन्द्रियसहित जीव.

ऋाक्षाः) द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय (**तसजीवा**=त्रसजीवाः) त्रस जातिके संसारी जीव (**होंति**=भवन्ति) होते हैं ॥

११ मराठीः—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय व वनस्पतिकाय वगैरे अनेक प्रकारचे जे एकेंद्रिय जीव ते स्थावर संसारी जीव होत. शंख वगैरे द्वींद्रिय जीव, मुंगी, ढेकुण वगैरे त्रींद्रिय जीव, भ्रमर वगैरे चतुरिंद्रिय जीव आणि मनुष्य वगैरे पंचेंद्रिय जीव हे सगळे त्रस संसारी जीव होत.

समणा अमणा णेया पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥

समनस्काः अमनस्काः ज्ञेयाः पञ्चेन्द्रियाः निर्मनस्काः परे सर्वे ।
बादरसूक्ष्माः एकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ताः इतराः च ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ–(**पंचेंदिय**=पञ्चेन्द्रियाः) पंचेन्द्रियजीव (**समणा**=समनस्काः) मनसहित संज्ञी तथा (**अमणा**=अमनस्काः)मनरहित असंज्ञी(**णेया**=ज्ञेयाः)जानने(**परे**=परे)बाकीके(**सव्वे**=सर्वे) सब जीव (**णिम्मणा**=निर्मनस्काः) मनरहित अर्थात् असैनी हैं जिनमेंसे (**एइंदी**=एकेन्द्रियाः) एकेन्द्रिय जीव (**बादरसुहमा**=बादरसूक्ष्माः) बादर तथा सूक्ष्म दो प्रकारके हैं. (**च**=च) और (**सव्वे**

१ स्पर्शन और रसना इन दो इन्द्रियोंवाले जीव.

२ स्पर्शन रसना और नासिका इन तीन इन्द्रियोंवाले जीव.

३ स्पर्शन रसना नासिका और चक्षुः इन चार इन्द्रियोंवाले जीव.

४ स्पर्शन रसना नासिका चक्षु और कान इन पांच इन्द्रियों सहित जो जीव हों उनको पंचेन्द्रिय कहते हैं.

=सर्वे) उपर्युक्त समस्त प्रकारके जीव (**पज्जत्त**=पर्य्याप्ताः) प-र्य्याप्त और (**इदरा**=इतराः) इतर अर्थात् अपर्याप्त दोनों हैं १२

भावार्थ–एकेन्द्रिय सूक्ष्म १, एकेन्द्रिय बादर २, द्वीन्द्रिय ३, त्रीन्द्रिय ४, चतुरिन्द्रिय ५, सैनीपंचेन्द्रिय ६, असैनीपंचेन्द्रिय ७, इस प्रकार जीवोंके सात भेद हैं और सातों ही प्रकारके जीव पर्याप्त अपर्याप्त होनेसे १४ प्रकारके हैं. और इन चौदह भेदोंकोही जीव समास कहते हैं ।

१२ मराठीः—पञ्चेंद्रिय जीवांत समनस्क (संज्ञी) व अमनस्क (असंज्ञी) असे दोन भेद आहेत. आणि बाकीचे ह्मणजे बादर एकेंद्रिय व सूक्ष्म एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय आणि चतुरिंद्रिय हे सगळे जीव निर्मनस्क (असंज्ञी) होत. एकेंद्रियापासून पंचेंद्रियापर्यंत सगळे जीव पर्याप्त व अप-र्याप्त असे दोन प्रकारचे आहेत.

---

(१). **आहारसरीरिंदिय पज्जत्ती आणपाणभासमणो ।**
चत्तारि पंच छप्पिय इगविगलासण्णिसण्णीणं ॥ १ ॥

भावार्थ—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये ६ पर्याप्ति हैं. इनमेंसे एकेन्द्रियके आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास ये ४ पर्याप्ति होतीं हैं. सैनी पंचेन्द्रियके छहों ही हैं. बाकीके सब जीवोंके मनरहित पांच पर्याप्ति होती हैं. पर्याप्तिसहित जीवको पर्याप्त कहते हैं और जिस जीवके उत्पन्न होनेपर जब तक उपर्युक्त ४, या ५ या ६ पर्याप्ति पूर्णतया प्राप्त न हो, तब तक उसको अपर्याप्त जीव कहते हैं ॥ १ ॥

१ आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा आणि मन ह्या सहा प-र्याप्ति आहेत. ह्यांपैकीं एकेंद्रियजीवास आहार, शरीर, इंद्रिय आणि श्वासो-च्छ्वास ह्या चार पर्याप्ति असतात. संज्ञी पंचेंद्रियास सहाहि पर्याप्ति अस-तात. बाकीच्या सर्व जीवांस मनरहित पांच पर्याप्ति असतात.

ज्याला वर सांगितलेल्या पर्याप्ति प्राप्त झाल्या असतात तो पर्याप्त होय. आणि ज्याला पर्याप्ति पूर्ण नाहींत तो अपर्याप्त होय.

मग्गणगुणठाणेहिं य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया। विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥१३॥

मार्गणागुणस्थानैः च चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात् ।
विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ–(**तह**=तथा) तथा (**संसारी**=संसारिणः) संसारी जीवोंके (**चउदसहिं**=चतुर्दशभिः) चौदह (**मग्गणगुणठाणेहिं**=मार्गणागुणस्थानैः) मार्गणा और गुणस्थानोंसे जो भेद हैं, सो (**असुद्धणया**=अशुद्धनयात्) व्यवहारनयकी अपेक्षासे (**हवंति**=भवन्ति) होते हैं (**य**=च) और (**सुद्धणया**=शुद्धनयात्) शुद्ध निश्चय नयसे (**सव्वे**=सर्वे) सब जीव (**हु**=खलु) निश्चय करके (**सुद्धा**=शुद्धाः) शुद्ध ही (**विण्णेया**=विज्ञेयाः) जानने ॥ १३ ॥

१३ मराठीः—अशुद्धनयाच्या अपेक्षेनें चौदा मार्गणा व चौदा गुणस्थानांच्या योगानें संसारी जीव सगळे अशुद्ध आहेत. शुद्धनयाच्या अपेक्षेनें सगळे जीव शुद्धज्ञानात्मक आहेत.

सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्वस्वभाव.

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥ १४ ॥

निष्कर्माणः अष्टगुणाः किञ्चिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः ।
लोकाग्रस्थिताः नित्याः उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ–जो जीव (**णिक्कम्मा**=निष्कर्माणः) अष्टकर्मरहित

(**अट्ठगुणा**=अष्टगुणाः) सम्यक्त्वादि अष्टगुणसहित (**चरमदेहदो**=चरमदेहतः) अन्तके शरीरसे (**किंचूणा**=किञ्चिदूनाः) किंचित् न्यून (**णिच्चा**=नित्याः) ध्रौव्यकर युक्त और (**उप्पादवयेहि**=उत्पादव्ययाभ्याम्) उत्पादव्ययकर (**संजुत्ता**=संयुक्ताः) संयुक्त जीव (**सिद्धा**=सिद्धाः) सिद्ध हैं–तथा वे जीव ऊर्ध्वगमनस्वभावसे सीधे उपरिको गमन करके (**लोयग्गठिदा**=लोकाग्रस्थिताः) लोकके अग्रभागमें [सिद्धशिलापर] स्थित हैं ॥ १४ ॥

१४ ज्यांच्या आठ कर्मांचा नाश झालेला आहे, आणि त्यामुळें ज्यांना आठ गुण प्राप्त झाले आहेत, जे चरम ह्मणजे शेवटच्या देहापेक्षां किंचित् कमी आकाराचे जे सिद्ध, ते उत्पाद व्यय आणि ध्रौव्य यांहींकरून युक्त व आपल्या ऊर्ध्वगमनस्वभावामुळें लोकाग्र शिखरावर राहिलेले आहेत.

स्वभावसे ऊर्ध्वगमनका वर्णन.

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को ।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥ १ ॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धैः सर्वतः मुक्तः ।
ऊर्द्ध्वं गच्छति शेषाः विदिशावर्ज्यां गतिं यान्ति ॥ १ ॥

अन्वयार्थ–(**पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं**=प्रकृतिस्थि-

---

(१) जिसका कभी नाश न हो उसको ध्रौव्य कहते है.

(२) प्रत्येक द्रव्य हरसमय षट् गुणी हानि और वृद्धि सहित है, सो हानिको व्यय और वृद्धिको उत्पाद कहते है. द्रव्यका लक्षण ही यह है कि "जो उत्पादव्यय और ध्रौव्यगुणसहित हो." तत्त्वार्थसूत्रमें कहाभी है कि.–**सद्द्रव्यलक्षणं । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।**

त्यनुभागप्रदेशबन्धैः) प्रकृतिबंन्ध स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध और प्र-देशबंध करके (**सव्वदो**=सर्वतः) सर्व प्रकारसे (**मुक्को**=मुक्तः) छूटा हुआ जीव स्वभावसे (**उड्ढं**=ऊर्ध्वं) ऊर्ध्व गमन करता है (**सेसा**=शेषाः) शेषके जो कर्मबन्धसहित जीव हैं, वे (**विदिसा-वज्जं**=विदिशावर्ज्याम्) विदिशाको छोडकर (**गदिं**=गतिम्) ग-तिको (**जंति**=यान्ति) जाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो जीव उपर्युक्त चार प्रकारके कर्मबन्धसे छूटा जाता है, वह सीधा मुक्तिस्थान अर्थात् सिद्धशिलाकी ओर ऊर्ध्व ही ग-मन करता है. और जो कर्म सहित जीव हैं, वे दूसरी गतिको जाते हैं. सो आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत, और वायव्य इन चार विदिशाओंको न जा कर जो गति बांधी है उसीको सीधा तथा एक या दो तथा तीन मोड़ा खाकर, एक या दो तथा तीन समयके भीतर २ चला जाता है॥

१ मराठीः—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग आणि प्रदेश या चारही प्रकारच्या कर्मबंधापासून संपूर्णपणें सुटलेला जो जीव, तो स्वभावानें त्रैलोक्याच्या शिखरापर्यंत वर जातो. आणि बाकीचे ह्मणजे कर्मबंधांतून न सुटलेले जीव, ईशा-

---

(१) कर्मपुद्गलोंका ज्ञानावरणी १ दर्शनावरणी २ मोहिनीय ३ अंतराय ४ वे-दिनीय ५ आयुः ६ नाम ७ और गोत्र इन आठ प्रकारके स्वभावरूप होना उसको प्रकृतिबन्ध कहते हैं ।

(२) ये बंधे हुए कर्म जितने समय तक जीवके साथ रहेंगे, उतनी स्थितिका पड़ना सो स्थितिबन्ध है ।

(३) कर्मोंमें न्यूनाधिक फल देनेकी शक्तिका पड़ना सो अनुभागबन्ध कहाता है ।

(४) प्रतिसमय सिद्धराशिसे अनन्तवें भाग और अभव्यराशिसे अनंतगुणा कर्मपुद्गलोंका आत्माके प्रदेशोंके साथ सम्बन्ध होना है, सो प्रदेशबंध है ।

न, आग्नेय, नैर्ऋत्य वायव्य वगैरे विदिशांकडे न जातां आपणांस बांधलेल्या गतीस जातात.

[चौदहवीं गाथासे जीवका ऊर्ध्वगमनस्वभाव स्पष्टतया प्रगट नहिं होता और उपर्युक्त गाथामें हेतुपूर्वक उर्ध्वगमनत्व प्रगट किया गया है. इस कारण यह गाथा मूलग्रन्थकर्ताकी होना संभव है परन्तु संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव महाराजने इसकी टीका नहीं की, इस कारण इसका मूलग्रन्थकर्त्ताकी होना भी संदेहात्मक है तथापि विद्यार्थियोंको विशेष उपयोगी समझ हमने सान्वयार्थ और टिप्पणीसहित लिख दी है.]

इति जीवस्य नवाधिकाराः समाप्ताः ।

अजीवद्रव्योंके नाम और भेदोंका वर्णन.

अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु१५

अजीवः पुनः ज्ञेयः पुद्गलः धर्मः अधर्मः आकाशम् ।
कालः पुद्गलः मूर्त्तः रूपादिगुणः अमूर्त्तिः शेषाः तु ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ–(**पुण**=पुनः) फिर (**पुग्गल**=पुद्गलः) पुद्गल (**धम्मो**=धर्मः) धर्म (**अधम्म**=अधर्मः) अधर्म (**आयासं**=आकाशम्) आकाश (**कालो**=कालः) काल, ये पांच द्रव्य (**अज्जीवो**=अजीवः) अजीव=जड़ (**णेओ**=ज्ञेयः) जानने चाहिये. इनमेंसे (**पुग्गल**=पुद्गलः) पुद्गलद्रव्य (**रूवादिगुणो**=रूपादिगुणः) रूप रस गन्ध स्पर्श गुणवाला (**मुत्तो**=मूर्त्तः) मूर्तिक है (**दु**=तु) और (**सेसा**=शेषाः) बाकीके ४ द्रव्य धर्म अधर्म काल और आकाश (**अमुत्ति**=अमूर्तिः) अमूर्तिक हैं ॥ १५ ॥

१५ मराठीः–अजीवद्रव्य–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश आणि काल अशा भेदांनीं पांच प्रकारचें आहे. त्यांपैकीं पु-

द्गलद्रव्य रूप, रस, गंध, स्पर्श इत्यादि गुणांनीं युक्त व मूर्तिक आहे. बाकीचीं चार अमूर्तिक आहेत.

पुद्गलद्रव्यकी पर्य्यायें.

सद्दो बंधो सुहमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥

शब्दः बन्धः सूक्ष्मः स्थूलः संस्थानभेदतमश्छायाः ।
उद्योतातपसहिताः पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ–(**सद्दो**=शब्दः) शब्द (**बंधो**=बन्धः) मृत्पिण्डादि तथा नोकर्मादि द्रव्यकर्मबन्ध (**सुहमो**=सूक्ष्मः) बारीकपना (**थूलो**=स्थूलः) स्थूलपना (**संठाणभेदतमछाया**=संस्थानभेदतमश्छायाः) समचतुरादि ६ प्रकारके संस्थान, खंड खंड होना, अन्धकार और छाया (**उज्जोदादवसहिया**=उद्योतातपसहिताः) उद्योत कहिये प्रकाश आतप कहिये सूर्य और अग्निकी उष्णता सहित ये सब (**पुग्गलदव्वस्स**=पुद्गलद्रव्यस्य) पुद्गलद्रव्यकी (**पज्जाया**=पर्यायाः) पर्याय कहिये अवस्थायें हैं. जो कि हमेशा पलटती रहती हैं ॥ १६ ॥

१६ मराठीः–शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलपणा, सम, चतुरस्त्र वगैरे सहा प्रकारचीं संस्थानें, भेद (खंड खंड होणें) अंधकार छाया, प्रकाश व उष्णता हे सगळे पुद्गल द्रव्याचे पर्याय होत.

धर्मद्रव्यका स्वरूप.

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥ १७ ॥

गतिपरिणतानां धर्मः पुद्गलजीवानां गमनसहकारी ।
तोयं यथा मत्स्यानां अगच्छतां नैव सः नयति ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ–(**गइपरिणयाण**=गतिपरिणतानाम्) जो गमन करनेमें परिणमते (**पुग्गलजीवाण**=पुद्गलजीवानाम्) पुद्गल और जीवोंको (**गमणसहयारी**=गमनसहकारी) गमन करनेमें सहायक हो, सो (**धम्मो**=धर्मः) धर्मद्रव्य है. किन्तु (**अच्छंता**=अगच्छताम्) जो स्थिर हैं, उनको (**सो**=सः) वह धर्मद्रव्य (**णेव**=नैव) कदापि नहीं (**णेई**=नयति) चलाता है (**जह**=यथा) जैसे (**तोयं** =तोयं) जल (**मच्छाणं**=मत्स्यानाम्) मछलियोंको सहकारी है १७

भावार्थ–जिसप्रकार मछलियोंको चलते समय जल सहायक है, उसीप्रकार धर्मद्रव्य जीवपुद्गलोंके गमन होते समय सहकारी कारण है. जैसे मछलीको ठहरे रहनेकी इच्छा होती है तो जल जबरदस्ती उसको नहिं चलाता, उसीप्रकार धर्मद्रव्य भी प्रेरणा करके जीव पुद्गलोंको नहिं चलाता है, किन्तु उदासीनतासे मदद करनेवाला है ॥ १७ ॥

१७ मराठीः–ज्याप्रमाणें मत्स्यांस संचार करण्याच्या कामीं जल हें सहाय कारक आहे; त्या प्रमाणें जीव व पुद्गलांस गमन करण्यास सहाय करणारें जें, तें धर्मद्रव्य होय. पाण्यांतील मत्स्यांस गमन करण्याची इच्छा झाली तरच जल सहाय करितें. आपण होऊन गमनाविषयीं जबरदस्ती करीत नाहीं. त्याप्रमाणें जीवपुद्गलांस गमनाची इच्छा होईल तेंव्हांच धर्मद्रव्य सहायक होतें.

अधर्मद्रव्यका स्वरूप.

ठाणजुयाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥ १८ ॥

स्थानयुतानां अधर्मः पुद्गलजीवानां स्थानसहकारी ।
छाया यथा पथिकानां गच्छतां नैव सः धरति ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ–(**जह**=यथा) जैसें (**छाया**=छाया) छाया (**पहियाणं**=पथिकानां) पथिकजनोंको ठहरनेमें सहायक है उसीप्रकार जो (**ठाणजुयाण**=स्थानयुतानाम्) तिष्ठते हुए (**पुग्गल जीवाण**=पुद्गलजीवानाम्)पुद्गल और जीवोंको (**ठाणसहयारी**=स्थानसहकारी) ठहरनेमें सहायक हो वह (**अधम्मो**=अधर्मः)अधर्मद्रव्य है.किन्तु (**गच्छंता**=गच्छताम्)चलते हुए जीव पुद्गलोंको(**सो**=सः) वह अधर्मद्रव्य (**णेव**=नैव) कदापि नहिं (**धरई**=धरति) पकड़ता है अथवा ठहराता है ॥ १८ ॥

१८ मराठीः–वाटसरु वाट चालत असतांना मध्यंतरीं थोडेंसें रहावेंसें वाटल्यास सांवली जशी मदत करिते, त्याप्रमाणें गमन करणाऱ्या जीवपुद्गलांस मध्येंच रहावेंसें वाटल्यास सहाय देणारें जें, तें अधर्मद्रव्य होय. सांवली जशी पथिकांच्या गमनक्रियेस प्रतिबंधक नसून विश्रांतीस मात्र कारण होते, त्याप्रमाणें अधर्मद्रव्य जीवपुद्गलांच्या गमनक्रियेस प्रतिबंधक नसून स्थितीस मात्र कारण होतें.

आकाश द्रव्यका लक्षण.

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

अवकाशदानयोग्यं जीवादीनां विजानीहि आकाशम् ।
जैनं लोकाकाशं अलोकाकाशमिति द्विविधं ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः–(**जीवादीणं**=जीवादीनाम्)जीवादिकद्रव्योंको (**अवगासदाणजोग्गं**=अवकाशदानयोग्यम्) अवकाश दान देनेवाला

(**जेण्हं**=जैनं)जिनेन्द्र भगवान्कर भाषित(**आयासं**=आकाशं)आकाश द्रव्य (**वियाण**=विजानीहि) जानो और वह आकाशद्रव्य (**लोगागासं**=लोकाकाशम्) लोकाकाश तथा (**अल्लोगागासं**=अलोकाकाशम्) अलोकाकाश (**इदि**=इति) इसप्रकार (**दुविहं**=द्विविधं) दो भेदरूप है ॥ १९ ॥

भावार्थ–जो समस्त पदार्थोंको अवकाश [स्थानदान] देता है अर्थात् जिस जगहपर समस्तद्रव्योंके युगपत् रहनेकी योग्यता है उसको जिनमतमें आकाशद्रव्य कहते हैं ॥ १९ ॥

१९ मराठीः–जीव आणि अजीव द्रव्यांस अवकाश देण्यास जो योग्य ह्मणजे समर्थ आहे तो आकाश होय. जैनमतांत लोकाकाश व अलोकाकाश अशा भेदांनीं तो दोन प्रकारचा मानिला आहे.

लोकाकाश अलोकाकाशका विभाग.

धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥

धर्माधर्मौ कालः पुद्गलजीवाः च सन्ति यावन्मात्रे ।
आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकः उक्तः ॥ २० ॥

अन्वयार्थः–(**जावदिये**=यावन्मात्रे)जितने (**आयासे**=आकाशे) आकाशमें (**धम्माधम्मा**=धर्माधर्मौ) धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य(**कालो**=कालः) कालद्रव्य (**य**=च) और (**पुग्गलजीवा**=पुद्गलजीवाः) पुद्गल तथा जीवद्रव्य (**संति**=सन्ति) हैं (**सो**=सः) वह (**लोगो**=लोकः) लोकाकाश है. और (**तत्तो**=ततः) तिससे (**परदो**=परतः) परे (**अलोगुत्तो**=अलोकः उक्तः) अलोकाकाश कहा गया है ॥२०॥

२० मराठीः–धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल आणि जीव हीं पांच

द्रव्यें जितक्या आकाशांत राहतात त्यास लोकाकाश ह्मणतात त्याच्या पलीकडे अलोकाकाश सांगितला आहे. तो अनंत आहे.

कालद्रव्यका लक्षण.

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादिलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

द्रव्यपरिवर्तनरूपः यः सः कालः भवेत् व्यवहारः ।
परिणामादिलक्षणः वर्त्तनालक्षणः च परमार्थः ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः–(**जो**=यः) जो (**दव्वपरिवट्टरूवो**=द्रव्यपरिवर्त्तनरूपः) द्रव्योंको परिवर्त्तन करनेमें समय घटिकादिरूप है और (**परिणामादिलक्खो**=परिणामादिलक्षणः) द्रव्योंका परिणमन क्रिया परत्व अपरत्व है लक्षण जिसका (**सो**=सः) वह (**ववहारो**=व्यवहारः) व्यवहार (**कालो**=कालः) काल (**हवेइ**=भवेत्) है (**य**=च) और (**वट्टणलक्खो**=वर्त्तनालक्षणः) वर्तना है लक्षण जिसका सो (**परमट्ठो**=परमार्थः) परमार्थ काल कहिये मुख्य कालद्रव्य है ॥ २१ ॥

भावार्थ–द्रव्यकी पर्य्याय पलटनेमें कारण रूप जो समयघटिकादि है सो तो व्यवहार काल है और द्रव्योंको परिणमावनेमें निष्क्रियारूप सहायक आकाशके प्रत्येक प्रदेशमें रत्नोंकी राशिके समान भिन्न २ कालका एक एक अणु है सो मुख्य कालद्रव्य है ॥ २१ ॥

२१मराठीः–द्रव्यांचे पर्याय पालटण्यास कारणीभूत जो समय घटिका वगैरे रूपाचा काल तो व्यवहार काल होय. तो व्यवहार काल परिणाम वगैरेंनीं लक्षिला जातो. ह्मणजे परिणाम वगैरे त्यांचीं लक्षणें आहेत. गुण व पर्याय यांस परिणाम ह्मणतात. किंवा परिणाम ह्मणजे द्रव्यांची जीर्ण अवस्था. अथवा वयानें अमक्यापेक्षां अमुक लहान किंवा थोर हा जो परापरत्व भेद

यालाहि परिणाम ह्मणतात. वर्तनालक्षण जो काल तो परमार्थ होय. वर्तना ह्मणजे क्रिया. अर्थात् क्रियेला जो आधार तो परमार्थ काल होय. यालाच मुख्य काल ह्मणतात.

निश्चयकालद्रव्यका विशेषस्वरूप.

लोयायासपदेसे इक्केक्के जे ट्ठिया हु इक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ।।२२।।

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन ये स्थिताः खलु एकैकौ ।
रत्नानां राशि-इव ते कालाणवः असंख्यद्रव्याणि ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(**इक्केक्के**=एकैकस्मिन्)एक एक (**लोयायासपदेसे**=लोकाकाशप्रदेशे) लोकाकाशके प्रदेशमें (**जे**=ये) जो (**इक्केक्का**=एकैकौ) एक एक कालाणु (**रयणाणं**=रत्नानाम्) रत्नोंकी (**रासीमिव**=राशि-इव) राशिके सदृश (**हु**=खलु) निश्चयकरकें (**ट्ठिया**=स्थिताः) स्थित हैं (**ते**=ते) वे (**कालाणू**=कालाणवः) कालके अणु(**असंखदव्वाणि**=असंख्यद्रव्याणि) लोकाकाशके प्रदेशोंके बराबर ही असंख्यात द्रव्य है ॥ २२ ॥

२२ मराठीः—एक एक अशा क्रमानें लोकाकाशाचे जितके प्रदेश आहेत तितक्या प्रदेशांत एक एक अशा परिपाटीनें कालाचे असंख्य परमाणु रत्नांच्या राशीप्रमाणें भरलेले आहेत.

षड्द्रव्योपसंहार और अस्तिकाय.

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पंच अत्थिकाया दु।।२३

एवं षड्भेदं इदं जीवाजीवप्रभेदतः द्रव्यं ।
उक्तं कालवियुक्तं ज्ञातव्याःपञ्चअस्तिकायाः तु ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(**एवं**=एवम्)इसप्रकार (**जीवाजीवप्पभेददो**=

जीवाजीवप्रभेदतः) जीव और अजीवके भेदसे (**इदं**=इदम्) यह (**द-व्वं**=द्रव्यं) द्रव्यसमूह(**छब्भेयं**= षड्भेदम्) छह भेदरूप(**उत्तं**=उक्तं) कहा गया है. (**दु**=तु) और (**कालविजुत्तं**=कालवियुक्तं) कालद्रव्यको छोडकर (**पंच**=पञ्च) पांच द्रव्य (**अत्थिकाया**=अस्तिकायाः) अस्तिकाय (**णायव्वा**=ज्ञातव्याः) जानने चाहिये ॥ २३ ॥

२३ मराठीः—याप्रमाणें एक जीव व बाकीचीं पांच अजीव मिळून सहा प्रकारचीं द्रव्यें सांगितलीं. या सहां पैकीं कालद्रव्य सोडून बाकीच्या पांच द्रव्यांस " अस्तिकाय " ह्मणतात.

अस्तिकायका लक्षण.

संति जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य॥२४॥

सन्ति यतः तेन एते अस्ति इति भणन्ति जिनवराः यस्मात् ।
काया इव बहुदेशाः तस्मात् कायाः च अस्तिकायाः च ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ—(**जदो**=यतः) क्योंकि (**एदे**=एते) ये जीवादिक पांच द्रव्य (**संति**=सन्ति) हैं (**तेण**=तेन) तिस कारणसे इनको (**जिणवरा**=जिनवराः) जिनेन्द्र भगवान् जे हैं ते (**अत्थीति**=अस्ति इति) अस्ति ऐसा (**भणंति**=भणन्ति) कहते हैं. (**य**=च) फिर ये (**जह्मा**=यस्मात्) जिस कारणसे (**काया इव**=काया इव) कायकी तरह (**बहुदेसा**=बहुदेशाः) बहुत प्रदेशवाले हैं, (**तह्मा**=तस्मात्) तिस कारणसे (**काया**=कायाः) काय हैं. अतएव ये पांचों द्रव्य (**अत्थिकाया**=अस्तिकायाः) अस्तिकाय कहलाते हैं ॥ २४ ॥

२४ मराठीः—तीं पांच द्रव्यें 'नित्यं सन्ति ' ह्मणजे निरंतर आहेत ह्मणून त्यांला 'अस्ति 'असें जिनेश्वरांनीं ह्मटलें आहे. ज्यामुळें शरीराप्रमाणें त्या पांचहि द्रव्यांचे प्रदेश पुष्कळ आहेत

त्या कारणावरून त्यांना, 'काय' ह्मटलें आहे मिळून अस्तिकाय ही संज्ञा काल सोडून बाकीच्या पांच द्रव्यांस दिली आहे;

द्रव्योंके प्रदेशोंकी संख्या.

हुंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगोण तेण सो काओ ॥२५॥

भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे ।
मूर्ते त्रिविधाः प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ—(**जीवे**=जीवे) एक जीवमें और (**धम्माधम्मे**=धर्माधर्मयोः) धर्मअधर्म द्रव्यमें (**असंखा**=असंख्याः) असंख्यात (**पदेसा**=प्रदेशाः) प्रदेश (**हुंति**=भवन्ति) हैं और (**आयासे**=आकाशे) आकाशद्रव्यमें (**अणंत**=अनन्ताः) अनन्त प्रदेश हैं (**मुत्ते**=मूर्ते) पुद्गल द्रव्यमें (**तिविह**=त्रिविधाः) तीन प्रकारके अर्थात् संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं (**कालस्स**=कालस्य) कालद्रव्यके (**एगो**=एकः) एक प्रदेश है (**तेण**=तेन) तिस कारणसे (**सो**=सः) वह कालद्रव्य (**काओ**=कायः) कायवान् [**ण**=न] नहीं है ॥ २५॥

२५ मराठीः—जीव, धर्म आणि अधर्म या तीनद्रव्यांचे प्रदेश असंख्य आहेत. आकाशाचे प्रदेश अनंत आहेत. मूर्त ह्मणजे पुद्गलाचे प्रदेश संख्यात असंख्यात व अनंत असे तीन प्रकारचे आहेत. आणि कालाचा एकच प्रदेश आहे. (कारण, कालाचे परमाणु रत्नांच्या राशीप्रमाणें आहेत.) त्यामुळें कालास काय अशी संज्ञा मिळाली नाहीं.

पुद्गलद्रव्यका एक अणु भी कायवान् है.

एयपदेसो वि अणू णाणाखंध प्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६

एकप्रदेशः अपि अणुः नानास्कन्धः प्रदेशतः भवति ।
बहुदेशः उपचारात् तेन च कायः भणन्ति सर्वज्ञाः ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ–(**एयपदेसोवि**=एकप्रदेशःअपि) एक प्रदेशवाला भी (**अणु**=अणुः) पुद्गलपरमाणु (**पदेसदो**=प्रदेशतः)प्रदेशोंकी अपेक्षा (**णाणाखंध**=नानास्कन्धः)अनेक स्कन्धवाला(**होदि**=भवति) होता है (**य**=च) और (**बहुदेसो**=बहुदेशः) शक्तिकी अपेक्षा बहुत प्रदेशवाला है (**तेण**=तेन) तिस कारणसे (**सव्वण्णू**=सर्वज्ञाः) सर्वज्ञदेव जे हैं ते (**उवयारा**=उपचारात्) व्यवहारनयसे (**काओ**=कायः) कायवान् (**भणंति**=भणन्ति) कहते हैं ॥ २३ ॥

२६ मराठीः–(पुद्गलपरमाणुहि एकप्रदेशी आहे. ह्मणून त्यालाहि कायत्व संभवत नाहीं. या शंकेच्या निवृत्ती करितां ही गाथा सांगितली आहे.)एक प्रदेशी परमाणुहि बहुप्रदेशी होतो. कारण, त्याच परमाणूचे अनेकप्रकारचे पुद्गलाचे स्कंध प्रदेश बनतात. ह्मणून तत्त्व जाणणारांनीं पुद्गलाच्या परमाणूसहि काय अशी संज्ञा उपचारानें दिली आहे.

एकप्रदेशका परिमाण.

जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुवट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥

यावन्मात्रं आकाशं अविभागीपुद्गलाण्ववष्टब्धम् ।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्वाणुस्थानदानार्हम् ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ–(**जावदियं**=यावन्मात्रं) जितना (**आयासं**=आकाशं) आकाश (**अविभागीपुग्गलाणुवट्ठद्धं**=अविभागीपुद्गलाण्ववष्टब्धं] जिसका फिर खंड नहिं हो सके ऐसे पुद्गल परमाणुद्वारा रोका-जाय (**तं**=तम्) उसको (**खु**=खलु) निश्चयकरकें (**सव्वाणुट्ठा-**

णदाणरिहं=सर्वाणुस्थानदानार्हम्) समस्त प्रकारके अणुओंको स्थान दान देने योग्य (**पदेसं**=प्रदेशम्) एकप्रदेश अर्थात् आकाशका एकप्रदेशमात्र क्षेत्र (**जाणे**=जानीहि) जानो ॥ २७ ॥

भावार्थ—आकाशके जितने क्षेत्रमें पुद्गलका सबसे छोटा टुकड़ा आजावे उतने क्षेत्रको एकप्रदेश कहते हैं. इसी एकप्रदेशमात्र क्षेत्रमें कालका एक अणु धर्मअधर्मद्रव्यके एक एक प्रदेश और पुद्गलके अनेक अणु आ सक्ते हैं ॥ २७ ॥

२७ मराठीः—जितका आकाश अविभागी ह्मणजे अत्यंतसूक्ष्म अशा पुद्गलाच्या परमाणूनें व्यापला जातो त्यास एक प्रदेश ह्मणतात. तो सूक्ष्मप्रदेश सर्व जीव, पुद्गल वगैरेंच्या अणूंस स्थान देण्यास समर्थ आहे असें समज. ह्मणजे येवढ्याच प्रदेशाच्या क्षेत्रांत कालाचा एक अणु, धर्म—अधर्म द्रव्यांचा एक एक प्रदेश व पुद्गलांचे अनेक परमाणु येऊं शकतात [कारण, आकाशाच्या अवगाहनपणामुळें त्याच्या ठिकाणीं तशी शक्ति आहे.]

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

आस्रवादि सप्तपदार्थोंके कहनेकी प्रतिज्ञा.

आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥

आस्रवबन्धनसंवरनिर्जरामोक्षाः सपुण्यपापाः ये ।
जीवाजीवविशेषाः ते अपि समासेन प्रभणामः ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ–(**जे**=ये) जे (**सपुण्णपावा**=सपुण्यपापाः) पुण्य और पापसहित (**आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा**=आस्रवबन्धन संवरनिर्जरामोक्षाः) आस्रव बन्ध संवर निर्जरा और मोक्ष हैं ते (**जीवाजीवविसेसा**=जीवाजीवविशेषाः) जीव और अजीवके ही भेद हैं सो (**तेवि**=तेअपि) वे भी (**समासेण**=समासेन) संक्षेपताके साथ (**पभणामो**=प्रभणामः) कहते हैं ॥ २८ ॥

२८ मराठीः–पाप व पुण्य यांनीं सहित असे जे आस्रव, बंध, संवर निर्जरा आणि मोक्ष हे पदार्थ जीवाजीवांचे विशेष भेद आहेत. ह्मणून तेहि येथें संक्षेपानें सांगतो.

भावास्रव और द्रव्यास्रवका लक्षण.

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥ २९ ॥

आस्रवति येन कर्म परिणामेन आत्मनः स विज्ञेयः ।
भावास्रवः जिनोक्तः कर्मास्रवणं परः भवति ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ–(**अप्पणो**=आत्मनः)आत्माके (**जेण**=येन) जिस (**परिणामेण**=परिणामेन) भावसे (**कम्मं**=कर्म) पुद्गलकर्म (**आसवदि**=आस्रवति) आता है (**स**=सः) उसे (**जिणुत्तो**=जिनोक्तः) भगवद्भाषित (**भावासवो**=भावास्रवः) भावास्रव (**विण्णेओ**=विज्ञेयः) जानना चाहिये और (**कम्मासवणं**=कर्मास्रवणम्)पुद्गलकर्मोंका आना जो है सो (**परो**=परः) दूसरा अर्थात् द्रव्यास्रव (**होदि**=भवति) होता है ॥ २९ ॥

भावार्थ–आत्माके जिन रागादि भावोंसे पुद्गलद्रव्य कर्मरूप होते हैं. उन भावोंको तो भावास्रव कहते हैं और उन कर्मरूप परिणमे पुद्गलद्रव्योंको द्रव्यास्रव कहते हैं ॥ २९ ॥

२९ मराठीः—आत्म्याच्या ज्या शुभाशुभ परिणामानें पुद्गल द्रव्यें कर्मरूपाचीं होतात, त्या परिणामास भावास्रव ह्मणतात अर्थात् द्रव्यास्रवास जें कारण तो भावास्रव जाणावा. आणि त्या कर्मरूपानें परिणत झालेल्या पुद्गलद्रव्यास द्रव्यास्रव ह्मणतात.

भावास्रवके भेद व नाम.

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ सविण्णेया ।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ३०

मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः सविज्ञेयाः ।
पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रय चत्वारः क्रमशः भेदा तु पूर्वस्य॥ ३० ॥

अन्वयार्थ—(**पुव्वस्स**=पूर्वस्य) भावास्रवके (**मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ**=मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोध इत्यादिक जे हैं उन्हें (**कमसो**=क्रमशः) क्रमसे(**पण-पण-पणदह-तिय-चदु**=पञ्च-पञ्च-पञ्चदश-त्रयः-चत्वारः) पांचे[1], पांचे[2], पंद्रहें[3], तीनें[4] और चार (**भेदा**=

(१) एकान्तमिथ्यात्व १ विनयमिथ्यात्व २ विपरीतमिथ्यात्व ३ संशयमिथ्यात्व ४ और अज्ञान मिथ्यात्व, ये पांच मिथ्यात्व हैं।(२) हिंसा चोरी असत्य कुशील और परिग्रहकी आकांक्षारूप होना सो पांच अविरति है.

(३) **विकहा तहा कसाया इंदिय णिद्दा तहेव पणयो य ।**
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरस ॥ १ ॥
विकथा तथा कषायाः इन्द्रियः निद्रा तथैव प्रणयश्च ।
चत्वारः चत्वारः पञ्च एकैकं भवन्ति प्रमादा खलु पञ्चदश ॥ १ ॥

अर्थ—चार विकथा तथा ४ कषाय, पांच इन्द्रिय, निद्रा और रागअर्थात् रागद्वेष ये पंद्रह प्रमाद हैं.

(४) मनोयोग, वचनयोग और काययोग.

भेदाः) भेदरूप (**सविण्णेया**=संविज्ञेयाः) सम्यक् प्रकार जानने ॥

भावार्थ—मिथ्यात्व ५, अविरति ५, प्रमाद १५, योग ३, क्रोध मान माया लोभ भेदसे ४ कषाय, ये ५ प्रकार अथवा ३२ प्रकार भावास्रवके भेद हैं ॥ ३० ॥

३० मराठीः—५ मिथ्यात्व, ५ अविरति, १५ प्रमाद, ३ योग, ४ कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ.) हे सगळे भावास्रवाचे भेद आहेत.

द्रव्यास्रवके भेद.

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेदो जिणक्खादो॥३१॥

ज्ञानावरणादीनां योग्यं यत् पुद्गलं समास्रवति ।
द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेकभेदः जिनाख्यातः ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(**णाणावरणादीणं**=ज्ञानावरणादीनां) ज्ञानावरणादि अष्टप्रकार कर्मोंके (**जोग्गं**=योग्यं) होने योग्य (**जं**=यत् जो) (**पुग्गलं**=पुद्गलं) पुद्गलद्रव्य (**समासवदि**=समास्रवति) आता है (**स**=सः) उसे (**जिणक्खादो**=जिनाख्यातः) जिनेन्द्रभगवान् कर कहा हुआ (**अणेयभेदो**=अनेकभेदः) अनेकभेदरूप (**दव्वासवो**=द्रव्यास्रवः) द्रव्यास्रव (**णेओ**=ज्ञेयः) जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

३१ मराठीः—ज्ञानावरण वगैरे आठ कर्मांस योग्य असें जें पुद्गलद्रव्य प्राप्त होतें तो द्रव्यास्रव होय. तो अनेक प्रकारचा आहे; असें जिनानें सांगितलें आहे.

भावबन्ध व द्रव्यबन्धका लक्षण.

बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो॥ ३२॥

बध्यते कर्म येन चेतनभावेन भावबन्धः सः।
कर्मात्मप्रदेशानां अन्योऽन्यप्रवेशनं इतरः॥ ३२॥

अन्वयार्थः—(**जेण**=येन) जिस (**चेदणभावेण**=चेतनभावेन) चैतन्यभावसे (**कम्मं**=कर्म) कर्म (**बज्झदि**=बध्यते) बधता है अर्थात् आत्माके प्रदेशोंमें चिपट जाता है (**सो**=सः) वह परिणाम (**भावबंधो**=भावबन्धः) भावबन्ध है (**दु**=तु) और (**कम्मादपदेसाणं**=कर्मात्मप्रदेशानाम्) कर्म और आत्माके प्रदेशोंका (**अण्णोण्णपवेसणं**=अन्योऽन्यप्रवेशनम्) परस्पर एक क्षेत्रावगाह अर्थात् एकमेक हो जाना सो (**इदरो**=इतरः) दूसरा द्रव्यबन्ध है ३२

३२ मराठीः—आत्म्याच्या ज्या परिणामानें कर्मांचा बंध होतो त्या परिणामास भावबंध ह्मणतात. आणि कर्म व आत्मा यांचे प्रदेश परस्परांत प्रवेश करितात, त्याला इतर ह्मणजे द्रव्यबंध ह्मणतात.

बन्धके भेद और उनके कारण.

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात् तु चतुर्विधः बन्धः।
योगात् प्रकृतिप्रदेशौः स्थित्यनुभागौ कषायतः भवन्ति॥ ३३॥

अन्वयार्थ—(**बंधो**=बन्धः) बन्ध (**पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा**=प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात्) प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेशके भेदसे (**चदुविधो**=चतुर्विधः) चार प्रकारका है उ-

नमेंसे (**पयडिपदेसा दु**=प्रकृतिप्रदेशौ तु) प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो (**जोगा**=योगात्) मन वचन कायके योगसे (**होंति**=भवन्ति) होते हैं और (**ठिदिअणुभागा**=स्थित्यनुभागौ) स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध (**कसायदो**=कषायतः) कषायोंसे होते हैं॥३३॥

३३ मराठीः—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग आणि प्रदेश अशा भेदानें बंध चार प्रकारचा आहे. त्यापैकीं प्रकृति आणि प्रदेश हे दोन बंध मन, वचन आणि काय यांच्या योगापासून होतात; आणि स्थिति व अनुभाग हे दोन बंधकषायापासून होतात.

भावसंवर और द्रव्यसंवरका लक्षण.

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणो अण्णो ॥३४॥

चेतनपरिणामः यः कर्मणः आस्रवनिरोधने हेतुः ।
सः भावसंवरः खलु द्रव्यास्रवरोधनः अन्यः ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(**जो**=यः) जो (**चेदणपरिणामो**=चेतनापरिणामः) आत्माका भाव (**कम्मस्स**=कर्मणः) कर्मोंके (**आसवणिरोहणे**=आस्रवनिरोधने) आस्रवके रोकनेमें (**हेदु**=हेतुः) कारण है (**सो**=सः) वह (**भावसंवरो**=भावसंवरः) भावसंवर जानना और (**दव्वासवरोहणो**=द्रव्यास्रवरोधनः) द्रव्यास्रवका अभाव होना सो (**अण्णो**=अन्यः) द्रव्यसंवर है. ॥ ३४ ॥

३४ मराठीः—कर्मांच्या आस्रवाला ह्मणजे नवीन येणाऱ्या कर्माला रोंकण्यास कारण असा जो आत्म्याचा परिणाम तो भावसंवर होय. द्रव्यास्रवाला रोंकणारा (प्रतिबंध करणारा) जो तो द्रव्यसंवर होय.

भावसंवरके भेद.

तवसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपिहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा॥३५॥

तपःसमितिगुप्तयः धर्मानुप्रेक्षाः परीसहजयं च ।
चारित्रं बहुभेदाः ज्ञातव्याः भावसंवरविशेषाः ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—(**तवसमिदीगुत्तीओ**=तपःसमितिगुप्तयः) बारह प्रकार तप, पांच समिति, तीन गुप्ति (**य**=च) और (**धम्माणुपिहा**=धर्मानुप्रेक्षाः) दशप्रकार धर्म और बारह अनुप्रेक्षा (**परीसहजयो**=परीसहजयः) बाईस परीसहोंका जीतना तथा (**चारित्तं**=चारित्रम्) पांच प्रकारके चारित्र (**भावसंवरविसेसा**=भावसंवरविशेषाः) भावसंवरके विशेष हैं ते (**बहुभेया**=बहुभेदाः) अनेकभेदरूप (**णायव्वा**=ज्ञातव्याः) जानने चाहिये. ॥ ३५ ॥

३५ मराठीः—तप, समिति, गुप्ति, दशधर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहांस जिंकणें, पंचमहाव्रतें, वगैरे भावसंवराचे पुष्कळ विशेष भेद आहेत.

निर्जराका लक्षण व भेद.

जहकालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा॥

यथाकालेन तपसा च भुक्तरसं कर्मपुद्गलं येन ।
भावेन सडति ज्ञेया तत्सडनं चेति निर्जरा द्विविधा ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(**जहकालेण**=यथाकालेन) यथाकालकरके कर्मोंकी स्थिति पूरी होनेपर (**जेण**=येन) जिस (**भावेण**=भावेन) भावकारकें (**य**=च) पुनः (**तवेण**=तपसा) तप करके (**भुत्तरसं**=भुक्तरसं) भोगागया है सुखदुःखरूप फल जिसका ऐसा

(**कम्मपुग्गलं**=कर्म्मपुद्गलं) कर्मरूपी पुद्गल (**सडति**=सडति=सरति) झड़ जाता है सो भावनिर्जरा (**णेया**=ज्ञेया) जाननी (**च**=च) और (**तस्सडणं**=तत्सडनं) उस कर्मका झड़ना सो द्रव्यनिर्जरा जाननी (**इदि**=इति) इसप्रकार (**दुविहा**=द्विविधा) दो तरहँकी (**णिज्जरा**=निर्जरा) निर्जरा है ॥ ३६ ॥

३६ मराठीः—योग्य कालानें अथवा तपश्चर्येनें ज्यांतला रस ह्मणजे शक्ति किंवा सुखदुःखानुभव अनुभविला गेला आहे असें जें कर्मपुद्गल, तें जेणेंकरून झडून जातें, ती भावनिर्जरा होय आणि त्या कर्माचें जें गळणें ह्मणजे कर्म गळून जाणें याला द्रव्यनिर्जरा ह्मणतात. याप्रमाणें निर्जरा दोन प्रकारची जाणावी.

मोक्षके लक्षण और भेद.

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो क्खु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो यकम्मपुधभावो

सर्वस्य कर्मणः यः क्षयहेतुः आत्मनः खलु परिणामः ।
ज्ञेयः सः भावमोक्षः द्रव्यविमोक्षः च कर्मपृथग्भावः ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(**क्खु**=खलु) निश्चयकर (**जो**=यः) जो (**अप्पणो**=आत्मनः) आत्माका (**परिणामो**=परिणामः) भाव (**सव्वस्स**=सर्वस्य) समस्त (**कम्मणो**=कर्मणः) कर्मके (**खयहेदू**=क्षयहेतुः) क्षय होनेका कारण है (**स**=सः) सो (**भावमोक्खो**=भावमोक्षः) भाव मोक्ष है (**य**=च) और (**कम्मपुधभावो**=कर्मपृथग्भावः) द्रव्यकर्मोंका आत्मासे अलग हो जाना है सो (**दव्वविमोक्खो**=द्रव्यविमोक्षः) द्रव्यमोक्ष(**णेओ**=ज्ञेयः)जानना चाहिये ३७

३७ मराठीः—सगळया कर्मांचा नाश होण्यास कारण असा जो आत्म्याचा परिणाम तो भावमोक्ष जाणावा. व कर्मांपासून आत्म्याचा जो पृथग्भाव तो द्रव्यमोक्ष होय.

पुण्य और पापका वर्णन.

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च॥ ३८॥

शुभाशुभभावयुक्ताः पुण्यं पापं भवन्ति खलु जीवाः ।
सातं शुभायुः नाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थ—(**जीवा**=जीवाः) जीव (**सुहअसुहभावजुत्ता**= शुभाशुभभावयुक्ताः) शुभ और अशुभ भावोंकर सहित होते हुऐ (**खलु**=खलु)निश्चय करकें (**पुण्णं**=पुण्यं) पुण्यरूप और (**पावं**=पापं) पापरूप (**हवंति**=भवन्ति) होते हैं (**सादं**=सातं) सातावेदिनी (**सुहाउ**=शुभायुः) शुभ आयुः (**णामं**=नाम) शुभरूप नामकर्म और (**गोदं**=गोत्रं) उच्च गोत्र ये सब तो (**पुण्णं**=पुण्यं) पुण्य हैं (**च**=च) और (**पराणि**=पराणि) असतावेदिनी अशुभ आयु अ=शुभनामकर्म और नीच गोत्र (**पावं**=पापं) पाप हैं ॥ ३८ ॥

३८ मराठीः—शुभ व अशुभ परिणामांनीं युक्त असे जे जीव ते पुण्य व पाप यांचा अनुभव घेतात. ह्मणजे शुभपरिणामानें पुण्य व अशुभपरिणामानें पाप घडून त्यापासून जीव सुखदुःखें अनुभवितात. सातावेदनीय, शुभायुः, शुभनाम आणि शुभ गोत्र हीं पुण्याचीं चिन्हें आणि दुसरीं ह्मणजे असातावेदनीय, अशुभायुः, अशुभनाम व नीचगोत्र हीं पापाचीं चिन्हें होत.

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे सप्ततत्त्व-नवपदार्थप्रतिपादको नाम द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग

सम्मद्दंसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं मोक्षस्य कारणं जानीहि ।
व्यवहारात् निश्चयतः तत्रिकमयः निजः आत्मा ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थ–(**ववहारा**=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (**सम्मद्दंसण**=सम्यग्दर्शनं) सम्यग्दर्शन (**णाणं**=ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान (**चरणं**=चरणं) सम्यक्चारित्र (**मोक्खस्स**=मोक्षस्य) मोक्षका (**कारणं**=कारणं) कारण (**जाणे**=जानीहि) जानो. और (**णिच्चयदो**=निश्चयतः) निश्चयनयसे (**तत्तियमइओ**=तत्रिकमयः) वह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र सहित (**णिओ**=निजः) स्वयं (**अप्पा**=आत्मा) आत्मा ही मोक्षका कारण है ॥ ३९ ॥

३९ मराठी=व्यवहारनयानें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान आणि सम्यक्चारित्र हीं तीन्हीं मिळून मोक्षाचें कारण होय; असें जाण. आणि निश्चयनयानें सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमय असा जो आत्मा तो स्वतः मोक्षास कारण आहे.

रत्नत्रययुक्त आत्मा ही मोक्षका कारण है.

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुयतु अण्णदवियम्हि ।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥

रत्नत्रयं न वर्तते आत्मानं मुक्त्वा अन्यद्रव्ये ।
तस्मात् तत्रिकमयः भवति खलु मोक्षस्य कारणं आत्मा ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ–(**अप्पाणं**=आत्मानं) आत्माको (**मुयतु**=मुक्त्वा) छोडकर (**अण्णदवियम्हि**=अन्यद्रव्ये) किसी दूसरे द्रव्यमें (**रयणत्तयं**=रत्नत्रयं) रत्नत्रय (**ण**=न) नहीं (**वट्टइ**=व-

संते) है. (**तह्मा**=तस्मात्) तिस कारणसे (**तत्तियमइओ**=तत्रिकमयः) उस रत्नत्रयके सहित (**आदा**=आत्मा) आत्मा (**हु**=खलु) ही (**मोक्खस्स**=मोक्षस्य) मोक्षका (**कारणं**=कारणं) कारण (**होदि**=भवति) है ॥ ४० ॥

४० मराठीः—आत्म्याशिवाय इतर कोणत्याही द्रव्यांत रत्नत्रय (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र) असत नाहीं; ह्मणून तत्रिकमय ह्मणजे रत्नत्रयमय असा जो आत्मा तोच मोक्षास कारण होय.

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानका स्वरूप.

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदिजह्मि४१

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं रूपं आत्मनः तत् तु ।
दुरभिनिवेशविमुक्तं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति सति यस्मिन् ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थ—(**जीवादीसद्दहणं**=जीवादिश्रद्धानं) जीवादितत्त्वोंका-श्रद्धान करना जो है सो (**सम्मत्तं**=सम्यक्त्वं) सम्यक्त्व है अर्थात् सम्यग्दर्शन है (**तं**=तत्) सो (**अप्पणो**=आत्मनः) आत्माका (**रूवं**=रूपं) स्वरूप है अर्थात् आत्माका खास स्वभाव (गुण वा धर्म] है (**तु**=तु) और (**जह्मि सदि**=यस्मिन्सति) जिसके होते हुए (**दुरभिणिवेसविमुक्कं**=दुरभिनिवेशविमुक्तं) विपरीत अभिप्रायकर रहित (**णाणं**=ज्ञानं) ज्ञान (**खु**=खलु) वास्तवमें (**सम्मं**=सम्यक्) सम्यक् (**होदि**=भवति) होता है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है. उसके होते संते यथार्थ ज्ञान है, वह ही वास्तवमें सम्यग्ज्ञान है॥४१॥

४१ मराठीः—जीवादिक तत्त्वांचें जें श्रद्धान ह्मणजे रुचि तें सम्यग्दर्शन होय; आणि सम्यग्दर्शनच आत्म्याचें स्वरूप होय. सम्यद्दर्शन असलें ह्मणजे दुरभिनिवेश [संशय, विमोह आणि विभ्रम] रहित असें सम्यग्ज्ञान प्राप्त होतें.

सम्यग्ज्ञानका विशेष स्वरूप.

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयभेयं च ॥ ४२ ॥

संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं आत्मपरस्वरूपस्य ।
ग्रहणं सम्यग्ज्ञानं साकारं अनेकभेदं च ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थ—(**संसयविमोहविब्भमविवज्जियं**=संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं) संशय[1] विपर्य्यय[2] और अनध्यवसायरहित[3] (**सायारम्**=साकारम्) आकार सहित (**अप्पपरसरूवस्स**=आत्मपरस्वरूपस्य) अपने और परके स्वरूपका (**गहणं**=ग्रहणं) जानना जो है सो (**सम्मं-णाणं**=सम्यग्ज्ञानम्) सम्यग्ज्ञान है. (**च**=च) और वह सम्यग्ज्ञान-(**अणेयभेयं**=अनेकभेदं) अनेकभेदरूप है अर्थात् मतिज्ञानादिके-भेदसे अनेक प्रकारका है ॥ ४२ ॥

४२ मराठीः—संशय, विमोह आणि विभ्रम यांहींकरून र-

---

(१) सीपके टुकडेको पड़ा देख " यह सीप है कि चांदी ? " इसप्रकार-के ज्ञानको संशयज्ञान कहते हैं ।

(२) सीपको सीप न समझ उससे विपरीत चांदी समझ लेना सो विपर्य्ययज्ञान है ।

(३) रास्ते चलते समय घास तिनके का स्पर्श होनेपर यह "क्या लगा?" " कुछ भी होगा !" इसप्रकारके ज्ञानको अनध्यवसाय कहते हैं ।

हित व सविकल्पक किंवा आकारसहित असें जें स्वपर स्वरूपज्ञान तें सम्यग्ज्ञान होय.

दर्शनोपयोगका स्वरूप.

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये ॥४३॥

यत्सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वा आकारम् ।
अविशेषयित्वा अर्थे दर्शनं इति भण्यते समये ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—[**अट्ठे**=अर्थे] अर्थमें (**अविशेसिदूण**=अविशेषयित्वा) विशेषता न करकें (**आयारं**=आकारम्) विशेष स्वरूपको ग्रहण (**णेव कट्टु**=नैव कृत्वा) नहीं करकें (**भावाणं**=भावानाम्) पदार्थोंका (**जं**=यत्) जो (**सामण्णं**=सामान्यम्) सामान्य (**गहणं**=ग्रहणं) ग्रहण करना अर्थात् जानपना है सो (**दंसणं**=दर्शनं) दर्शन है (**इदि**=इति) इसप्रकार (**समये**=समये) जिनागममें (**भण्णये**=भण्यते) कहा है ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो ज्ञान पदार्थोंके अर्थमें अथवा आकार कहिये स्वरूपमें कुछ भी विशेषता न करकें " कोई वस्तु है" इसप्रकार पदार्थकी सत्तामात्र (मोजूदगी) को जानें सो दर्शन (दर्शनोपयोग) है.

४३ मराठीः—विशेष स्वरूपाला ग्रहण न करून व पदार्थांचा आकार ही न जाणून केवळ सामान्यपणें पदार्थांची सत्ता अवलोकन करणें याला दर्शन ह्मणतात. असें शास्त्रांत सांगितलें आहे.

दर्शनज्ञानके उत्पन्न होनेका नियम.

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दुण्णि उवयोगा ।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि ॥ ४४॥

दर्शनपूर्वं ज्ञानं छद्मस्थानां न द्वौ उपयोगौ ।
युगपत् यस्मात् केवलिनाथे तु ते द्वौ अपि ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ–(**छदमत्थाणं**=छद्मस्थानाम्) अल्पज्ञानियोंके (**दंसणपुव्वं**=दर्शनपूर्वक) दर्शनपूर्वक (**णाणं**=ज्ञानं) ज्ञान होता है. (**जह्मा**=यस्मात्) क्योंकि (**दुण्णि**=द्वौ) दोनों (**उवयोगा**=उपयोगौ) उपयोग (**जुगवं**=युगपत्) एकसाथ (**ण**=न) नहीं होते परन्तु (**केवलिणाहे तु**=केवलिनाथे तु) केवलज्ञानीके विषै तो (**ते**=तौ) वे (**दो वि**=द्वौ अपि)दोनों ही उपयोग (**जुगवं**=युगपत्) एक साथ होते हैं

भावार्थ–दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग केवलज्ञानीके सिवाय अन्य किसीके भी एकसाथ नहिं होते किन्तु पहिले दर्शनोपयोग होके पीछेंसे ज्ञानोपयोग होता है ॥ ४४ ॥

मराठीः–**जे छद्मस्थ ह्मणजे अल्पज्ञानी आहेत किंवा-ज्यांचें ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीयकर्म किंचित् उरलें-आहे अशा मुनीस दोन उपयोग [ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग] एकदम न होतां प्रथम दर्शन व नंतर ज्ञान होतें. कारण ते दोन्ही उपयोग केवली भगवानासच एकदम होतात**

व्यवहारचारित्रका सामान्यलक्षण व भेद.

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ४५

अशुभात् विनिवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिः च जानीहि चारित्रम् ।
व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयात् तु जिन भणितम् ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थः–(**असुहादो**=अशुभात्) अशुभसे (**विणिवित्ति**=विनिर्वृत्तिः) विरक्त होना (**य**=च) और (**सुहे**=शुभे)शुभकार्य्यमें (**पवित्ति**=प्रवृत्ति प्रवृति) होना सो (**चारित्तं**=चारित्रं) चारित्र

(**जाण**=जानीहि) जानो (**दु**=तु)और वह चारित्र (**ववहारणया**=व्यवहारनयात्) व्यवहारनयसे (**वदसमिदिगुत्तिरूवं**=व्रतसमितिगुप्तिरूपं) ५ महाव्रत, ५ समिति,३गुप्ति रूप, १३प्रकारका-(**जिणभणियं**=जिनभाणितं) जिनेन्द्र भगवानने कहा है॥ ४५॥

४५मराठीः—व्यवहारनयानें अशुभापासून निवृत्ति आणि-शुभकर्मांत प्रवृत्ति करणें याचे नांव चारित्र. हें व्रत, समिति, गुप्ति वगैरे रूपाचें आहे. हें जिनानें सांगितलें आहे.

निश्चयचारित्रका लक्षण.

वहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तम्॥४६॥

बहिरभ्यंतरक्रियारोधः भवकारणप्रणाशार्थम्।
ज्ञानिनः यत् जिनोक्तं तं परमं सम्यक्चारित्रम्॥ ४६॥

अन्वयार्थ–(**भवकारणप्पणासट्ठं**=भवकारणप्रणाशार्थं) संसारके कारणोंको नष्ट करनेके लिये (**जं**=यत्) जो (**णाणिस्स**=ज्ञानिनः) ज्ञानीके (**वहिरब्भंतरकिरियारोहो**=बहिरभ्यन्तरक्रियारोधः) शुभाशुभ वचनकायकी प्रवृत्तिरूप बाह्यक्रिया और मनोविकल्परूप अन्तरंग क्रियाका रोकना है (**तं**=तत्) सो (**जिणुत्तं**=जिनोक्तम्) जिनेन्द्रभगवान्कर भाषित (**परमं**=परमं) उत्कृष्ट-(**सम्मचारित्तं**=सम्यक्चारित्रम्) सम्यक्चारित्र है॥ ४६॥

४६ मराठीः—संसाराच्या बीजाचा नाश करण्याकरितां ज्ञानीमुनि जो बाह्य व अंतरक्रियांचा त्याग करितो तें उत्कृष्ट चारित्र होय; असें जिनानें सांगितलें आहे.

ध्यानाभ्यासकरनेकी हेतुपूर्वक प्रेरणा.

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं ज्झाणं समब्भसह॥ ४७॥

द्विविधमपि मोक्षहेतुं ध्याने प्राप्नोति यत् मुनिः नियमात् ।
तस्मात् प्रयत्नचित्ताः यूयं ध्यानं समभ्यसध्वम् ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थ–(**जं**=यत्) क्योंकि (**मुणी**=मुनिः) मुनि (**दुविहंपि**=द्विविधमपि) दोनों[1] ही प्रकारके (**मोक्खहेउं**=मोक्षहेतुं) मोक्ष मार्गको (**णियमा**=नियमात्) नियमसे (**ज्झाणे**=ध्याने) ध्यानमें (**पाऊणदि**=प्राप्नोति) प्राप्त होजाते हैं (**तह्मा**=तस्मात्)-तिसकारणसे (**जूयं**=यूयं) तुम (**पयत्तचिता**=प्रयत्नचित्ताः) प्रयत्नचित्त होते हुए (**ज्झाणं**=ध्यानं) ध्यानको (**समब्भसह**=समभ्यसध्वं) भले प्रकार अभ्यास करो ॥ ४७ ॥

भावार्थ–ध्यान करनेसे मुनियोंको दोनों प्रकारके मोक्षमार्गकीप्राप्ति होती है इस कारण भलेप्रकार प्रयत्नशील हो कर ध्यानाभ्यासमें परिश्रम करना चाहिये ॥ ४७ ॥

४७ मराठीः–मोक्षाला कारण असे जे निश्चय व व्यवहार अशा भेदानें दोन प्रकारचे मोक्षमार्ग ते नियमानें मुनीस ध्यानामुळें प्राप्त होतात. याकरितां; तुह्मी प्रयत्नचित्ताचे होऊन; ह्मणजे खटपट करून ध्यानाचा अभ्यास करा.

ध्यानमें लगनेका मुख्य उपाय.

मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

मा मुह्यथ मा रज्यथ मा द्विष्यथ इष्टानिष्टार्थेषु ।
स्थिरं इच्छथ यदि चित्तं विचित्रध्यानप्रसिद्ध्यै ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थः–भो भव्यपुरुषो! (जइ=यदि) यदि तुम (**विचित्तज्झाणप्पसिद्धीए**=विचित्रध्यानप्रसिद्ध्यै) अनेक प्रकारके ध्यानकी

[1] निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग ।

सिद्धिके अर्थ (**चित्तं**=चित्तम्) चित्तको (**थिरं**=स्थिरं) स्थिर करना (**इच्छह**=इच्छथ) चाहते हो तो (**इट्ठणिट्ठअत्थेसु**=इष्टानिष्टार्थेषु) इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें (**मा**=मा) मत (**मुज्झह**=मुह्यथ) मोह करो (**मा**=मा) मत (**रज्जह**=रज्यथ) रंजायमान अर्थात् लवलीन होवो. (**मा**=मा)मत (**दुस्सह**=द्विष्यथ) द्वेष करो ॥ ४८ ॥

भावार्थ—यदि समस्तप्रकारके ध्यान करनेकी इच्छा हो तो इष्टपदार्थोंमें मोह प्रीति मत करो और अनिष्ट पदार्थोंमें द्वेषभाव मतकरो ॥ ४८ ॥

४८ मराठीः—भव्य हो, ध्यानाचे अनेक प्रकार आहेत, त्यांच्या सिद्धीकरितां, तुह्मी इष्ट व अनिष्ट अर्थाविषयीं मोह पावूं नका, अनुराग करूं नका व रोषही करूं नका; अर्थात् चित्त स्थिर ठेवा.

ध्यान करने योग्य मंत्रोंका उपदेश.

पणतीस सोल छ प्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

पञ्चत्रिंशत् षोडश षट् पंच चत्वारः द्विकं एकं च जपत ध्यायेत ।
परमेष्ठिवाचकानां अन्यत् च गुरूपदेशेन ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थ—(**परमेट्ठिवाचयाणं**=परमेष्ठिवाचकानाम्) पंच परमेष्ठिवाचक (**पणतीस**=पञ्चत्रिंशत्) पैंतीस[1] अक्षरोंको (**सोल**

---

(१) पैंतीस अक्षरोंका मंत्र–आर्या वा गाथाछंदः।
णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

षोडश) सोलहं अक्षरोंको (**छ**=षट्) छै अक्षरोंको [**पण**=पञ्च] पांचें अक्षरोंको (**चदु**=चत्वारः) चारें अक्षरोंको (**दुगं**=द्विकं) दो अक्षरोंको (**च**=च) और (**एगं**=एकं) एकं अक्षरको (**च**=च) इसके अतिरिक्त (**गुरूवएसेण**=गुरूपदेशेन) गुरूके उपदेशसे (**अ-ण्णं**=अन्यत्) अन्य सिद्धचक्रादि मंत्रोंको भी [**जवह**=जपत] जपो और (**झाएह**=ध्यायेत) ध्यावो ॥ ४९ ॥

---

१ सोलह अक्षरोंका मंत्र—**अरहंत सिद्ध आइरिया उवज्झाया साहू.**

२ छै अक्षरोंके ३ मंत्र—**अरहंत सिद्धा** अथवा **अरहंत सि सा** अथवा ॐ **नमः सिद्धेभ्यः ।**

३ पांच अक्षरोंका मंत्र—**अ सि आ उ सा ।**

४ चार अक्षरोंके दो मंत्र—**अरहंत** अथवा **अ सि साहू ।**

५ दो अक्षरोंके ३ मंत्र—**सिद्ध । अ सा । ॐ ह्रीं ।**

६ एक अक्षरका मंत्र—ॐ ॥ यथा—आर्याछंदः—

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो ।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंच परमेट्ठी ॥ १ ॥

भावार्थ—अरहंतका आद्य अक्षर '**अ**' अशरीरीका (सिद्धका) आद्य अक्षर '**अ**' आचार्यका आद्य अक्षर '**आ**' उपाध्यायका आद्य अक्षर '**उ**' मुनियोंका [साधुओंका] आद्य अक्षर '**म्**' इस प्रकार अ+अ+आ+उ+म् इन पांच अक्षरोंको व्याकरणके नियमानुसार सन्धित करनेसे पंच परमेष्ठीका वाचक **ओम्**=अथवा '**ओं**' अक्षर सिद्धहुआ है.

मराठीः—अरहंत, अशरीर (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय आणि मुनि या पंचपरमेष्ठिवाचक पांच शब्दांपैकीं प्रत्येक शब्दांच्या आद्य वर्णांचा (अ+अ+आ+उ+म्=) संधि होऊन 'ॐ' हा एकाक्षरी मंत्र निष्पन्न झाला आहे. ॐ ह्मणजे पंचपरमेष्ठी ।

४९ मराठीः—पसतीस, सोळा, साहा, पांच, चार, दोन आणि एक अशा क्रमानें तितक्या तितक्या अक्षरांचा परमेष्ठिवाचक जो मंत्र, तो तुह्मी जपा व ध्यान करा. याशिवाय सिद्धचक्र वगैरे मंत्राचे भेद आहेत; ते गुरुच्या उपदेशानें समजून घ्या.

अरहंत परमेष्ठीका स्वरूप व उसको ध्यानेकी प्रेरणा.

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमइओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

नष्टचतुर्घातिकर्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः ।
शुभदेहस्थः आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीयः ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ— (**णट्ठचदुघाइकम्मो**=नष्टचतुर्घातिकर्मा) नष्ट कर दिये हैं चार घातियाकर्म[1] जिसने ऐसा (**दंसणसुहणाणवीरियमइओ**=दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः) अनन्तदर्शन अनंतसुख अनंतज्ञान अनन्तवीर्य सहित (**सुहदेहत्थो**=शुभदेहस्थः) सप्त धातुरहित परम औदारिक शरीरमें स्थित (**सुद्धो**=शुद्धः) अष्टादश दोष रहित **अप्पा**=आत्मा) आत्मा (**अरिहो**=अर्हन्) अरहंत परमेष्ठी है. सो (**विचिंतिज्जो**=वि-चिन्तनीयः) विशेषप्रकारसे ध्यान करने योग्य है ॥ ५० ॥

५० मराठीः—ज्यानें चार घातिकर्मांचा नाश केला आहे; आणि त्यामुळें अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतज्ञान आणि अनंतवीर्य हीं ज्यास प्राप्त झालीं आहेत, जो शुभ ह्मणजे सप्तधातुमलरहित अशा देहांत राहणारा असा शुद्धात्मा अरहंत परमेष्ठी आहे, त्याचें तुह्मी चिंतवन करा.

---

(१) ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहिनीय और अंतराय ये ४ कर्म आत्माके ज्ञानादि गुणोंको घात करते हैं इसकारण इनको घातियाकर्म कहते हैं.

सिद्धपरमेष्ठीका स्वरूप और ध्यानकी प्रेरणा.

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणवो दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो ज्झाएह लोयसिहरत्थो५१

नष्टाष्टकर्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञायकः द्रष्टा ।
पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायेत लोकशिखरस्थः ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ–(**णट्ठट्ठकम्मदेहो**=नष्टाष्टकर्मदेहः) नष्ट कर दिये-हैं अष्टकर्म, देहसे जिसने (**लोयालोयस्स**=लोकालोकस्य) लोका-लोकका (**जाणवो**=ज्ञायकः) जाननेवाला और (**दट्ठा**=द्रष्टा) दे-खनेवाला (**पुरिसायारो**=पुरुषाकारः) देहरहित पुरुषके आकार-(**लोयसिहरत्थो**=लोकशिखरस्थः) लोकके अग्रभागमें स्थित ऐसा-(**अप्पा**=आत्मा) आत्मा (**सिद्धो**=सिद्धः) सिद्ध परमेष्ठी है. सो नित्य ही (**ज्झाएह**=ध्यायेत) ध्याया जावे अर्थात् स्मरण कर-ने योग्य है ॥ ५१ ॥

५१ मराठीः–ज्यानें आठ घातिकर्मांचा नाश केला आहे, ज्यास देह नाहीं, जो लोकालोकांस जाणतो व पाहतो, जो पुरुषाकार आहे, असा जो त्रैलोक्यशिखरावर वास करणार शुद्धात्मा तो सिद्धपरमेष्ठी होय. त्याचें तुह्मी ध्यान करा.

आचार्य परमेष्ठीका स्वरूप व उसके ध्यानकी प्रेरणा.

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पंपरं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी ज्झेओ॥५२॥

दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपाचारे ।
आत्मानं परं च युनक्ति सः आचार्यः मुनिः ध्येयः ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ–जो मुनि (**दंसणणाणपहाणे**=दर्शनज्ञानप्रधा-ने) दर्शनाचार ज्ञानाचार है मधान जिनमें ऐसे (**वीरियचारित्त-**

वरतवायारे=वीर्य्यचारित्रवरतपाचारे) वीर्य्याचार चारित्राचार और श्रेष्ठ तपाचार इन पांच प्रकारके सदाचारोंमें (**अप्पं**=आत्मानं) अपनेको (**च**=च) और (**परं**=परं) अन्यको (**जुंजइ**=युनक्ति) जोड़ता है अर्थात् लगाता है (**सो**=सः) वह (**मुणी**=मुनिः) मुनि (**आयरिओ**=आचार्य्यः) आचार्य्य है सो नित्यही (**ज्झेओ**=ध्येयः) ध्यान करने योग्य है ॥ ५२ ॥

५२ मराठीः—दर्शन व ज्ञान यांहींकरून श्रेष्ठ अशा वीर्यचारित्र व उत्कृष्ट तप अशा प्रकारच्या आचारामध्यें आपण प्रवृत्त असून इतरांसहि प्रवृत्त करितो तो आचार्यमुनि होय, त्याचें तुह्मीं ध्यान करा.

नमस्कार सहित उपाध्यायका स्वरूप.

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ५३

य: रत्नत्रययुक्त: नित्यं धर्मोपदेशने निरतः।
सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमस्तस्मै ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थः—(**जो**=यः) जो (**रयणत्तयजुत्तो**=रत्नत्रययुक्तः)-रत्नत्रय सहित (**णिच्चं**=नित्यं) निरंतर (**धम्मोवएसणे**=धर्मोपदेशने) धर्मोपदेश देनेमें (**णिरदो**=निरतः) लवलीन है (**सो**=सः) वह (**जदिवरवसहो**=यतिवरवृषभः) यतियोंमें श्रेष्ठ अर्थात् धर्मोद्धारक (**अप्पा**=आत्मा) आत्मा (**उवज्झाओ**=उपाध्यायः) उपाध्याय है (**तस्स**=तस्मै) तिस उपाध्यायके अर्थ (**णमो**=नमः) नमस्कार है ॥ ५३ ॥

५३ मराठीः—जो रत्नत्रयानें युक्त असून निरंतर धर्मोपदे-

श करितो व यतिश्रेष्ठ असा जो शुद्धात्मा उपाध्याय मुनि, त्यास नमस्कार असो.

साधुका (मुनिका) स्वरूप.

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्च सुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य यः खलु चारित्रम् ।
साधयति नित्यशुद्धं साधुः सः मुनिः नमः तस्मै ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थः–(**जो**=यः) जो (**मुणी**=मुनिः) मुनि (**दंसणणाणसमग्गं**=दर्शनज्ञानसमग्रं) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान कर सहित (**मोक्खस्स**=मोक्षस्य) मोक्षका (**मग्गं**=मार्गं) मार्गस्वरूप (**णिच्चसुद्धं**=नित्यशुद्धं) हमेशहशुद्ध (**चारित्तं**=चारित्रं) तेरह प्रकारके चारित्रको (**साधयदि**=साधयति) साधन करता है (**स**=सः) वह मुनि (**साहू**=साधुः) साधु है (**तस्स**=तस्मै) तिस साधुके अर्थ (**णमो**=नमः) नमस्कार है ॥ ५४ ॥

५४ मराठीः–दर्शन व ज्ञान यांहींकरून संपूर्ण व मोक्षास कारण असें जें शुद्ध चारित्र तें निरंतर साधणारा जो साधु मुनि त्यास नमस्कार असो.

साधुके निश्चयध्यानकी योग्यताका वर्णन.

जंकिंचि विचिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूणय एयत्तं तदा हु तं तस्स णिच्चयं ज्झाणं॥५५॥

यत् किञ्चित् विचिन्तयन् निरीहवृत्तिः भवेत् यदा साधुः ।
लब्ध्वा एकत्वं तदा खलु तं तस्य निश्चयं ध्यानम् ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ–(**जदा**=यदा) जिस समय (**साहू**=साधुः) साधु (**एयत्तं**=एकत्वं) एकान्तताको अथवा अयोगित्वको (**लद्धूणय**=ल-

ब्ध्वा) प्राप्त होकर (**जंकिंचि**=यत्किञ्चित्) जो कुछ भी (**विचिंतंतो**=विचिन्तयन्) विचार करता हुआ (**णिरीहवित्ती**=निरीहवृत्तिः) आकांक्षारहित वृत्तिवाला हो (**तदा**=तदा) उस समय (**हु**=खलु) निश्चय करके (**तस्स**=तस्य) तिस मुनिके (**तं**=तत्) वह क्रिया (**णिच्चयं**=निश्चयं) निश्चय (**ज्झाणं**=ध्यानम्) ध्यान (**हवे**=भवेत्) होता है ॥ ५५ ॥

५५ मराठीः—जेव्हां साधु एकत्वास पावून ह्मणजे कायिक वाचिक व मानसिक अशा सर्व क्रिया सोडून व बाह्याभ्यंतर परिग्रहाविषयीं निरिच्छ होऊन यत्किंचित् ह्मणजे द्रव्यरूप किंवा पर्यायरूप वस्तूचें चिंतवन अर्थात् ध्यान करणारा असा होतो; तेव्हां त्याचें तें ध्यान निश्चयध्यान जाणावें.

परमध्यानका लक्षण ।

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं॥ ५६ ॥

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किञ्चित् येन भूत्वा स्थिरः।
आत्मा आत्मनि रतः इदमेव परं भवेत् ध्यानम् ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ—भो भव्यपुरुषो ! तुम (**किंचि**=किञ्चित्) कुछ भी (**मा चिठ्ठह**=मा चेष्टत) मत चेष्टा करो (**मा जंपह**=मा जल्पत) मत बोलो (**मा चिंतह**=मा चिन्तयत) मत विचारो (**जेण**=येन-जिसकरके (**अप्पा**=आत्मा) आत्मा (**अप्पम्मि**=आत्मनि) अपनेमें ही (**थिरो**=स्थिरः) स्थिर (**होइ**=भूत्वा) होकर (**रओ**=रतः) लवलीन होय तो (**इणमेव**=इदमेव) यह ही (**परं**=परम्)उत्कृष्ट (**ज्झाणं**=ध्यानम्) ध्यान (**हवे**=भवेत्) होय है ॥५६॥

भावार्थ—न तो कोई उपाय करो और न किसीका चिंतवन करो एक मात्र आत्माका आत्मामें लीन होना ही उत्कृष्ट ध्यान है. ॥५६॥

५६ मराठीः—भव्यहो, तुह्मी कांहीं चेष्टा, बडबड, चिंता [विचार] वगैरे कांहीं करूं नका. तर फक्त जेणेंकरून आत्म्याच्या ठिकाणीं आत्मा रत व स्थिर होईल असें करा हेंच उत्कृष्ट ध्यान होय.

तपोव्रतश्रुतसहित ध्यानमें रत होनेकी प्रेरणा-

तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जह्मा ।
तह्मा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तपःश्रुतव्रतवान् चिदात्मा ध्यानरथधुरन्धरः भवेत् यस्मात् ।
तस्मात् तत्रिकनिरताः तल्लब्ध्यै सदा भवत ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थ—(**जह्मा**=यस्मात्) जिसकारणसे (**तवसुदवदवं**=तपःश्रुतव्रतवान्) तपश्रुतव्रतोंका धारक (**चेदा**=चिदात्मा) चेतन आत्मा (**ज्झाणरहधुरंधरो**=ध्यानरथधुरन्धरः) ध्यानरूपी रथकी धुराका धारक (**हवे**=भवेत्) होता है (**तह्मा**=तस्मात्) तिसकारणसे (**तल्लद्धीए**=तल्लब्ध्यै) तिस ध्यानकी प्राप्तिके अर्थ तुम (**सदा**=सदा) निरन्तर (**तत्तियणिरदा**=तत्रिकनिरताः) उन तीनोंमें लवलीन (**होह**=भवत) होओ ॥ ५७ ॥

भावार्थ—द्वादशप्रकारके तप और पंचमहाव्रतोंके धारक होकर अनेकशास्त्रोंके पठनपाठन करनेवाले मुनि ही ध्यानके धौरी होते हैं,इसकारण तुम भी तपव्रतके धारक हो कर शास्त्रके पठनपाठनमें लग्न होओ॥

५७ मराठीः—तप, शास्त्र व व्रत पाळणारा जो आत्मा तो ध्यानरथाचा धुरंधर होतो; ह्मणून, हे भव्यहो तुह्मी

रत्नत्रयाच्या किंवा परमपदाच्या प्राप्तीकरितां तप शास्त्र व व्रत या तीहींच्या ठिकाणीं रत (लीन) व्हा.

ग्रन्थकर्त्ताकी प्रार्थना.

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा
दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण
णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥ ५८॥

द्रव्यसंग्रहं इदं मुनिनाथाः दोषसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः।
शोधयन्तु तनुसूत्रधरेण नेमिचन्द्रमुनिना भणितं यत्॥५८॥

अन्वयार्थ—(**तणुसुत्तधरेण**=तनुसूत्रधरेण) अल्पशास्त्रके पाठी मुझ (**णेमिचंदमुणिणा**=नेमिचन्द्रमुनिना) नेमिचंद्रमुनि करके (**जं**=यत्) जो (**इणं**=इदम्) यह (**दव्वसंगहं**=द्रव्यसंग्रह) द्रव्यसंग्रह नामका ग्रन्थ (**भणियं**=भणितं) कहा गया है उसको (**सुदपुण्णा**=श्रुतपूर्णाः) शास्त्रके पाठी (**मुणिणाहा**=मुनिनाथाः) मुनियोंके नाथ (**दोससंचयचुदा**=दोषसंचयच्युताः 'सन्ताः') दोष संग्रहसे रहित होते हुए (**सोधयंतु**=शोधयन्तु) शुद्ध करो अर्थात् शुद्धता पूर्वक पढो पढाओ॥ ५८॥

५८ मराठीः—निर्दोष व शास्त्रपूर्ण अशा मुनिश्रेष्ठहो, आगमशास्त्रामध्यें अल्पबुद्धीचा अशा नेमिचंद्र मुनीनें सांगितलेल्या या द्रव्यसंग्रहास तुह्मी शुद्ध करा.

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे
मोक्षमार्गकथनं तृतीयोऽधिकारः॥ ३॥

समाप्तोऽयं द्रव्यसंग्रहग्रन्थः॥

अनुवादकका कथन।

दोहा.

संवत सत उनईसपर, सत्तावनकी साल।
बुध अषाढ वदि अष्टमी-दिवसहि पन्नालाल॥ १॥
कोल्हापुरके प्रान्तमें, श्रोलनन्दिनी पन्थ।
तामधि इक वनक्षेत्रपर, पूर्ण कियो लिख ग्रन्थ॥ २॥
श्रीयुत प्रियवर मित्र मम, बुध कल्लापा नाम।
तिन सहायतें ग्रन्थ यह, हुआ विशुद्ध ललाम॥ ३॥
जे नर नित इस ग्रन्थको, पढहिं सुनहिं सविचार।
ते इस भव यश-सुख लहैं, परभव भवदधिपार॥ ५॥



द्रव्यसंग्रहमें पास होनेकी कुंजी.

अर्थात्

विद्यार्थियोंको उपदेश,

हे विद्यार्थियो! यदि तुम उत्तम श्रेणीमें पास होना चाहते हो तो प्रस्तावनाके बाद जो " **द्रव्यसंग्रहके पढानेकी रीति** " लिखी है ठीक उसी तरहँ मूल, छाया, अन्वय, पदपदका अर्थ और भावार्थ कंठाग्र पढलो. और इसकी जो आगें प्रश्नावली छपाई है उनमेंके तथा उनके सहारेसे अन्यान्य प्रकारके दूसरे प्रश्न परस्पर करकें एक विद्यार्थी दूसरेकी मुखजबानी परीक्षा लिया करें. तथा गुरुजीसे प्रश्न लिखवा लिखवा कर महीनेमें दो वार लेखीपरीक्षा दिया करें. इस प्रकार करनेसे परीक्षा देनेकी तरकीब आजायगी और वार्षिक परीक्षाके समय न घबरानेकी आदत पड़ जायगी. सो हर महीनेमें दो बार लेखी परीक्षा अवश्य देना चाहिये.

दूसरे–जब वार्षिक परीक्षाके प्रश्न आवे तब घबराना नहिं चाहिये. धैर्य रखना और प्रश्नोंको कठिन देखकर एक तो हतास नहिं होना चाहिये. अर्थात् अपने हृदयमें ऐसी धारणा करनी चाहिये कि " ये तो कुछ भी नहीं इनका उत्तर तो अभी बातकी बातमें लिखे देतां हूं. " दूसरे प्रश्नावलीको एकबार आद्योपान्त बांचकर उनमेंसे तुम जिन जिन प्रश्नोंको समझ जावो और जिनका उत्तर तुमको भास गया हो सबसे पहिले उन्हीं प्रश्नोंका उत्तर लिखना सुरू कर दो परन्तु लिखते समय ,—

" तीसरे प्रश्नका उत्तर "

इस प्रकार एक पंक्तिमें हरएक प्रश्नके उत्तरका शीर्षक (हेडिङ्) लिखकर उसके नीचे उत्तर लिखा करो. ऐसा नहिं समझना कि पहिले प्रश्नका उत्तर लिखे बाद दूसरे प्रश्नका लिखना और दूसरेके वाद तीसरेआदिका इस प्रकार करनेसे और पहिले दूसरे तीसरे आदिका उत्तर शोचते बैठे रहनेसे बहुतसा काल वृथा चला जायगा और आगेंके जिन जिन प्रश्नोंका उत्तर तुमको अच्छी तरहँ आता हो उनका उत्तर भी भले प्रकार नहिं लिख सकोगे क्योंकि उत्तर लिखनेका काल बहुत कम मिलता है. इसकारण जिस जिस प्रश्नका उत्तर

तुमको आता हो सबसे पहिले उन्हीका उत्तर लिख डालो. उसके पीछे दूसरे प्रश्नोंका उत्तर शोचो और विचारपूर्वक लिखो.

तीसरे—किसी प्रश्नका उत्तर तुम पहिले थोड़ासा लिख चुके वा उस समय उसका उत्तर ठीक ठीक समझमें न आनेसे पूरा नहिं लिखा गया और पीछेसे तुमको स्मरण हो जाय तो उस प्रश्नका उत्तर पहिले उत्तरकी जगहँ हांसिये वगेरह पर बारीक बारीक अक्षरोंमें न लिखकर जहां तुमको जगहँ मिलै उसी जगहँ फिरसे—

" पांचवें प्रश्नका उत्तर इत्यादि "

इस प्रकार शीर्षक देकर जो कुछ लिखना चाहो लिख दो परन्तु पहिले उत्तरके शीर्षकपर (क) और दूसरी बारके उत्तर पर (ख) इसप्रकार उनमें क ख का नम्बर दे दो अथवा पहिलेके उत्तरके अंतमें ( ) ऐसे कांउंसमें सूचना लिखदो कि (इसका कुछ उत्तर अमुक पृष्ठमें भी लिखा है सो देख लें.) अथवा पहिलेका उत्तर अच्छा न हो या दूसरी बारके उत्तरसे सम्बन्ध न मिलता हो तो पहिले उत्तर को बिलकुल काट दो और दूसरी बार फिरसे लिखो.

चौथे,–जहांतक बनें अक्षर मोटे स्पष्ट और शुद्ध लिखना चाहिये.

पांचवें,–उत्तर लिखते समय न तो किसी अन्य विद्यार्थीकी तरफ देखो. और न किसीसे बार्तालाप करो. यदि कोई विद्यार्थी तुमसे कुछ पूछे तो न तो तुम कुछ बताओ और न तुम किसीको पूछो. हाँ यदि प्रश्नोंके अक्षर ठीक ठीक पढनेमें न आवे तो परिक्षा लेनेवाले प्रबन्धकर्ताओंसे पूछ देखो कि अमुक प्रश्न हमारे पढ़नेमें नहिं आता सो जरा पढकर सुना दो, तो वे अवश्य सुनादेंगे.

तुमारा हितैषी

पन्नालाल जैन.

द्रव्यसंग्रहकी प्रश्नावली

१ ली गाथा.

(१) मंगलाचरणकी प्रथम गाथा छाया अन्वय अर्थ और भावार्थ सहित लिखो (२) इन्द्र कौन कोनसे और कहां कहांके कितने हैं अगर जानते हो तो लिखो।

२ री गाथा.

(१) जीवके नव अधिकार कौन २ से हैं. (२) जीवका नव अधिकाररूप लक्षणकी मूलगाथा सान्वयार्थ लिखो.

३ री गाथा.

(१) जीवके त्रैकालिक प्राण कितने हैं (२) जीवके व्यवहार नयकी अपेक्षा कौन २ प्राण हैं (३) जीवके निश्चय नयकी अपेक्षा कौन २ से प्राण हैं (४) जीवके समस्त प्राणोंके नाम लिखो।

४ थी गाथा.

(१) उपयोग कितने हैं (२) दर्शनोपयोग कितने हैं, उनके नाम लिखो।

५ वीं गाथा.

(१) जीवके ज्ञानोपयोग कितने हैं उनके नाम और दूसरे भेद लिखो (२) ज्ञान कितनी प्रकारके हैं अथवा उसके कितने भेद हैं सो लिखो।

टिप्पणीकी गाथा पृष्ठ ६ में

(१) परोक्ष ज्ञान कौन कौन से हैं (२) विकलप्रत्यक्ष कौन २ से ज्ञान हैं (३) सकल प्रत्यक्ष ज्ञान कौन कौन से हैं।

६ ठी गाथा.

(१) व्यवहारनयकीं अपेक्षा जीवका लक्षण लिखो. (२) निश्चयनयकी अपेक्षा जीवका स्वरूप (लक्षण) लिखो. शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा जीवका लक्षण क्या है?

७ वीं गाथा.

(१) जीवके अमूर्त्ति अधिकारकी गाथा सान्वयार्थ लिखो (२) निश्चयनयकी अपेक्षा जीव मूर्तीक है या अमूर्तीक? (३) व्यवहारनयसे जीव मूर्तीक है या अमूर्तीक? (४) मूर्तीक होनेका कारण क्या है? (५) अमूर्तीक किस कारणसे है? (६) वर्ण कितने, रस कितने, गन्ध और स्पर्श कितने २ हैं उनके नाम लिखो।

८ वीं गाथा.

(१) कर्ता अधिकारकी गाथा सान्वयार्थ लिखो. (२) व्यवहारनयसे जीव किसका कर्त्ता है? (३) अशुद्धनिश्चयनयसे किसका कर्त्ता है? (४) शुद्धनिश्चयनयसे किसका कर्त्ता है?

९ वीं गाथा.

(५) जीव पौद्गलिककर्मफलका भोक्ता किस नयकी अपेक्षा है? (२) जीव निश्चयनयकी अपेक्षा भोक्ता है या नहीं यदि है तो काहेका भोक्ता है? (३) जीव रागादिक चैतन्यभावोंका भोक्ता है कि नहीं ? यदि है तो किस नयकी अपेक्षासे है?

१० वीं गाथा.

(१) जीव अपनी देहके परिमाण किस कारणसे रहता है? (२) क्या जीव कभी अपनी देहसे बाहर होता है? (३) यदि होता है तो कब होता है (४) निश्चयनयकी अपेक्षा जीवके प्रदेश कितने हैं? (५) जीव अपनी देहके परिमाण कब रहता है? (६) 'असमुहदो' इसकी संस्कृत क्या है और इसका अर्थ क्या है?

११ वीं गाथा.

[१] संसारी जीव कितने प्रकारके हैं उनके नाम लिखो. (२) त्रस जीव कितने प्रकारके हैं उनके नाम उदाहरणसहित लिखो. (३) स्थावर जीव कितने प्रकारके हैं उनके नाम व भेद लिखो. (४) पृथिवी और वायुकायके जीव त्रस हैं कि थावर ?

१२ वीं गाथा.

(१) पंचेन्द्रिय जीवके कितने भेद हैं? (२) संज्ञी असंज्ञी किसको कहते है? (३) एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय सैनी है कि असैनी ? (४) अथवा बादर है कि सूक्ष्म (५) बादर और सूक्ष्म जीव कौन २ से हैं उनके नाम भिन्न २ लिखो (६) पर्य्याप्त जीव कौन २ से है (७) अपर्याप्त कौन २ से हैं (८) पांच इन्द्रियें कौन २ सी हैं (९) चौदह प्रकारके जीव कौन २से हैं (१०) चौदह जीवसमास कौन २ से हैं (११) पर्य्याप्ति कितनी हैं (१२) किस २ जीवके कितनी २ पर्य्याप्ति हैं.

१३ वीं गाथा.

(१) अशुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षा संसारी जीवोंके कितने भेद हैं (२) मार्गणा गुणस्थानोंके भेदसे जीव १४ प्रकारके होते हैं सो किस नयकी अपेक्षा हैं (३) शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा जीवके कितने भेद हैं।

१४ वीं गाथा.

(१) सिद्ध कैसें होते हैं (२) सिद्धोंके आठ गुण कौन२से हैं.

पयडिट्ठिदि· इत्यादि गाथा.

(१) जीवका ऊर्ध्वगमन कब होता है (२) जीव शरीरको छोडकर दूसरी गतिको जाता है तो कौनसी दिशाको जाता है? (३) और कितने मोड़े खाकर अपने ठिकाने पहुंच सक्ता है?

१५ वीं गाथा.

(१) अजीव द्रव्य कितने हैं उनके नाम लिखो (२) अजीव द्रव्योंमें मूर्ति द्रव्य कौन २ से हैं (३) और अमूर्तिक कौन २ से हैं (४) रूप रस गन्ध और स्पर्श ये ४ गुण कौनसे द्रव्यमें होते हैं.

१६ वीं गाथा.

(१) पुद्गलद्रव्यकी पर्य्याय कौन २ सी हैं (२) 'संस्थान' किसको कहते हैं (३) भेद किसको कहते हैं?

१७ वीं गाथा.

(१) धर्मद्रव्यका स्वरूप (लक्षण) क्या है (२) धर्मद्रव्य मूर्तिक है कि अमूर्तिक (३) धर्मद्रव्य सर्वव्यापी है कि असर्वव्यापी (४) धर्मद्रव्य जीव पुद्गलको क्या सहायता करता है (५) यदि करता है तो वह सहायता प्रेरणापूर्वक करता है या उदासीनतासे?

१८ वीं गाथा.

(१) अधर्मद्रव्यका स्वरूप क्या है इत्यादि १७ वीं गाथाकी तरह समस्त प्रश्न हो सक्ते हैं.

१९-२० वीं गाथा.

(१) आकाश द्रव्य किसको कहे हैं २ और वह किस किस द्रव्यको क्या क्या सहायता करता है (३) आकाश द्रव्य कै प्रकारका है (४) लोकाकाश कहांतक है (५) अलोकाकाश कहां है (६) आकाशद्रव्य मूर्तीक है कि अमूर्तीक है (७) सर्वव्यापी है कि असर्वव्यापी (८) काय है कि अकाय है?

२१-२२ वीं गाथा.

(१) व्यवहारकालका लक्षण क्या है (२) निश्चय कालद्रव्यका स्वरूप क्या है (३) निश्चय कालद्रव्य अन्य द्रव्योंको क्या सहायता देता है (४) व्यवहार कालसे द्रव्योंमें क्या परिणाम होता है (५) कालद्रव्य मूर्तीक है कि अमूर्तीक (६) निश्चय कालद्रव्य एक कि अनेक (७) कालद्रव्य सर्वव्यापी है कि असर्वव्यापी (८) कालाणु परस्पर है मिलजाती है कि जुदी २ रहती है.

२३–२४ वीं गाथा.

(१) इन छहों द्रव्योंमें कौन २ सा द्रव्य अस्तिकाय है (२) कालद्रव्य अस्तिकाय है कि अकाय (३) अस्तिकायका लक्षण क्या है ?

२५–२६ वीं गाथा.

(१) किस किस द्रव्यके कितने कितने प्रदेश हैं ? (२) कालद्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं है ? (३) पुद्गलका एक परमाणु अस्तिकाय है कि नहीं (४) यदि है तो कौनसी नयकी अपेक्षा है ?

२७ वीं गाथा.

(१) प्रदेश किसको कहते हैं (२) आकाशके कितने बडे खण्डको प्रदेश कहते हैं (३) आकाशकी एक प्रदेश मात्र जगहमें अन्यद्रव्योंके प्रदेश भी रह सक्ते हैं या नहीं ।

२८ वीं गाथा.

(१) आस्रवादि सप्त पदार्थोंके नाम लिखो (२) आस्रवादि पदार्थ जीव हैं कि अजीव ?

२९–३० वीं गाथा.

(१) द्रव्यास्रव किसको कहते हैं (२) भावास्रव किसको कहते हैं (३) भावास्रवके कितने भेद हैं (४) और वे कौन २ से हैं.

३१ वीं गाथा.

(१) द्रव्यास्रवके कितने भेद हैं (२) द्रव्यास्रव किसको कहते हैं (३) द्रव्यास्रव कितने प्रकारके हैं.

३२–३३ वीं गाथा.

(१) बन्धका लक्षण लिखो (२) भावबन्धका स्वरूप क्या है (३) द्रव्यबन्ध किसको कहते हैं (४) बन्ध कै प्रकारके होते हैं उनके नाम लिखो (५) प्रकृति प्रदेशबन्ध काहेसे होते हैं (६) स्थिति और अनुभाग बन्ध काहेसे होते हैं (७) कषायसे कौनसे बन्ध होते हैं (८) योगोंके कारण कौनसा बन्ध होता है.

३४ वीं गाथा.

(१) संवर किसको कहते हैं (२) भावसंवरका स्वरूप क्या है (३) द्रव्यसंवर किसको कहते है.

३५ वीं गाथा.

(१) भावसंवर कै प्रकारके हैं (२) भावसंवरके भेद कहो. ३ भावसंवर-के विशेष लिखो.

३६ वीं गाथा.

(१) निर्जरा किसको कहते हैं (२) निर्जराका लक्षण कहो (३) निर्जराका स्वरूप कहो (४) निर्जरा कै प्रकारकी है (५) भावनिर्जरा किसको कहते हैं (६) द्रव्यनिर्जराका क्या स्वरूप है.

३७ वीं गाथा.

(१) भावमोक्ष किसको कहते हैं (२) द्रव्यमोक्षका स्वरूप लिखो.

३८ वीं गाथा.

१ जीव पुण्य अथवा पापयुक्त कब होता है २ पुण्यमयकर्म कौन कौनसे हैं ३ पापमय कर्म कौनसे हैं.

३९ वीं गाथा.

(१) व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप क्या है? (२) निश्चय नयसे मोक्ष मार्ग किसको कहते हैं?

४० वीं गाथा.

(१) वास्तवमें मोक्षका कारण क्या है? (२) आत्माके सिवाय भी दूसरा मोक्षमार्ग है? (३) यदि है तो वह कोनसा है? (४) और वह किस नयकी अपेक्षा है?

४१ वीं गाथा.

(१) सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं (२) श्रद्धान नाम काहेका है (३) सम्यग्ज्ञानका लक्षण क्या है (४) मनुष्यका जो सामान्य ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान कब होता है?

४२ वीं गाथा.

(१) सम्यग्ज्ञानका विशेष स्वरूप क्या है (२) सम्यग्ज्ञानके कितने भेद हैं (३) संशय विमोह विभ्रमका स्वरूप लिखो.

४३ वीं गाथा.

(१) दर्शनोपयोगका स्वरूप क्या है (२) सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोग एकही है या भेद है (३) यदि है तो क्या भेद है.

४४ वीं गाथा.

(१) दर्शन ज्ञानके उत्पन्न होनेका क्या नियम है (२) छद्मस्थोंके दर्शनोपयोग पहिले होता है या ज्ञानोपयोग? (३) केवली भगवान्‌के दर्शन ज्ञानसे पहिले होता है या पीछें?

४५ वीं गाथा.

(१) व्यवहारनयकी अपेक्षा चारित्रका लक्षण क्या है (२) व्यवहार चारित्रके कितने भेद हैं (३) इस ग्रन्थमें जो व्यवहार चारित्रका लक्षण कहा है वह मुनिका चारित्र है या श्रावकका?

४६ वीं गाथा.

(१) निश्चय नयकी अपेक्षा सम्यक्‌चारित्र किसको कहते हैं. (२) निश्चय चारित्रका लक्षण लिखो (३) यह निश्चयचारित्र मुनिके होता है या श्रावकके?

४७ वीं गाथा.

(१) ध्यान करनेसे क्या लाभ होता है?

४८ वीं गाथा.

(१) ध्यानमें किस प्रकार लगना चाहिये (२) ध्यानमें लगनेका उपाय क्या है?

४९ वीं गाथा.

(१) ध्यानमें कौन २ से मन्त्र जपने चाहिये (२) ध्यानमें जपने योग्य मन्त्र कितने हैं (३) वे मन्त्र कितने २ अक्षरवाले हैं (४) पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र कौनसा है उसको शुद्धतापूर्वक लिखो (५) 'ॐ' यह अक्षर पांचों परमेष्ठीका वाचक है या नहीं? (६) यदि है तो किस २ प्रकार से हैं सो लिखो.

५० वीं गाथा.

(१) अरहन्त परमेष्ठीका स्वरूप क्या है (२) अरहन्त किसको कहते हैं?

५१ वीं गाथा.

(१) सिद्धपरमेष्ठीका स्वरूप क्या है (१) सिद्धपरमेष्ठी कहां रहते हैं?

५२ वीं गाथा.

(१) आचार्य्य परमेष्ठीका स्वरूप क्या है (५) आचार्य्य किसको कहते हैं? (३) पांच आचार कौन २ से हैं?

५३ वीं गाथा.

(१) उपाध्यायका स्वरूप क्या है? (२) अरहन्त किसको कहते हैं?

५४ वीं गाथा.

(१) साधुका स्वरूप क्या है (२) मुनिका स्वरूप क्या है (३) साधु किसको कहते हैं?

५५ वीं गाथा.

(१) निश्चय ध्यानका स्वरूप क्या है (२) साधूके निश्चय ध्यानकी सिद्धि कब होती है?

५६–५७–५८ वीं गाथा.

(१) उत्कृष्ट ध्यानका स्वरूप क्या है (२) निश्चय ध्यानका स्वरूप क्या है (३) ५७ वीं गाथामें क्या कहा है (४) अन्तकी गाथाका अर्थ लिखो.

इति प्रश्नावली.



सूचना.

जैनग्रंथरत्नाकरका बंद होना.

विदित हो कि जिस उत्साहसे **'जैनग्रंथरत्नाकर'**का प्रारंभ हुआ था वह आद्यन्त नहिं रहा जिससे जो जो अपूर्व ग्रंथ इसमें प्रकाशित करने विचारे थे वे प्रकाशित नहिं कर पाये बलके **'रत्नकरंडश्रावकाचार'** और **द्रव्यसंग्रहका** प्रकाशित करना मूलनियमके विरुद्ध था तथापि प्रकाशित करके दो अंक बनाने पड़े। इसके अतिरिक्त एक वर्षमें १२ अंक निकालनेकी जगहँ सवा दो वर्ष लगे तथा १२ अंकोंमें जितने फारम देना विचारा था उतने फारम भी नहिं दे सके. सो इन सब अपराधोंके होनेका मूल कारण शक्तिसे अधिक कार्यका प्रारंभ करना है अर्थात् यह महान् कार्य धनाढ्य महाशयोंके अथवा जिनको धनाढ्योंकी पूर्ण सहायता प्राप्त हो उनके करनेका था, वह कार्य हम सरीखे निःसहाय अकिंचनोंके द्वारा प्रारंभ किया हुआ किसप्रकार चल सक्ता है ?

यद्यपि इसमें सर्वथा हमारा ही अपराध गिना जा सक्ता है क्योंकि—हमने शक्ति न होनेपर भी तथा जैनहितैषीसरीखे छोटेसे कार्यको तीन चार बार प्रारंभ करकें इसीकारणसे बंद करनेपर भी बिना किसीकी सहायताके ऐसे महान् कार्यको प्रारंभ करदिया। परन्तु क्या किया जाय ऐसे कार्योंके किये बिना कोरे बाबाजी (उदासीन) बनकर बैठे रहनेसे भी तो आपलोग, कापुरुष व प्रमादी अथवा परायेशिर मूंडमुंडाया आदि कहते ? इसके सिवाय हमारी २५ इच्छायें भी तो हैं ? उनमेंसे दो चार पूरी करनेकी आशासे किसी न किसीप्रकार हाथ पांव हिलाते रहे तो जातिधर्मकी उन्नति करनेमें अग्रगण्य कोई न कोई धनवान् वा अंगरेजीके विद्वान् इस जिनवाणीजीर्णोद्धारके कार्यको भी कदाचित् उन्नति कर समझ लेंगे तो वे हमारे इस कार्यमें अवश्य ही सहायक बन जांयगे अथवा धनवान् और विद्वानोंको यह कार्य किसीप्रकार उन्नतिकर नहीं दीखेगा तो इस जैनग्रन्थरत्नाकरके कमसे कम २०० ग्राहक होजानेसे भी इस कार्यको बराबर चलाते रहेंगे. ऐसे विचारसे ही यह कार्य प्रारंभ करदिया था. और ऐसा विचार करना हमारा अनुचित भी नहीं था क्यों कि मुम्बईसे श्वेताम्बरी भाइयोंकी तरफसे एक **'रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला'** नामकी द्विमासिकपुस्तक प्रकाशित होती है उसके बातकी बातमें ३५० ग्राहक श्वेताम्बरी दिगम्बरी दोनों भाई होगये हैं.

और दानवीर शेठ **माणेकचंद पानाचंदजी** आदिने सैकडों रुपयोंकी सहायता दी हैं तो हमको सहायता क्यों न मिलैगी? तथा हमारे **'जैनग्रंथरत्नाकरके'** कमसे कम २०० ग्राहक क्यों न होंगे? परन्तु हमारा ऐसा विचारना सर्वथा भूल भरा था क्यों कि आजतक न तो किसी धनवानसे हमें किसीप्रकारकी सहायता मिली और न किसी विद्वानसे ही सहानुभूति प्राप्त हुई, बल्के धनवानोंने तो हमारे इस कार्यमें एकप्रकारसे उल्टा विघ्न ही डाला। रही ग्राहकोंकी आशा सो खेदके साथ प्रगट करना पडता है कि–२॥ वर्षमें हजारों विज्ञापन बांटनेपर भी आज-तक कुल ३९ ग्राहक हुये हैं किन्तु उसके विरुद्ध ५० ग्राहक ऐसे हैं कि जिनसे हम किसीप्रकार भी मूल्य लेना उचित नहीं समझते और प्रत्येक ग्रंथकी एक एक प्रति अवश्य ही देनी पडी है और भविष्यतमें भी देनी पडैगी। इसी बीच-स्याद्वादपाठशालाकाशीकी स्थापनाके लिये भी इस कार्यको पांच महीनेतक बंद रख नेका विघ्न आ पडा जिससे अचिंतनीय आर्थिक हानिभी उठानी पडी। और जबतक विद्योन्नति चाहनेवाले दानवीरोंकी तथा विद्वानोंकी दृष्टि स्याद्वादपाठशालाकी ओर आकर्षित न हो और स्थायी प्रबंध न हो जाय तबतक फिर भी प्रतिवर्ष दो चार महीने उसकी सेवामें यह कार्य छोडना पडैगा नहीं तो उसके मुख्य प्रबंध कर्त्ता गण अपनी विमलबुद्धिसे स्याद्वादपाठशालाको मेरे घरका अथवा मेरे अकेलेका ही कार्य समझ **"भुसमें चिनगी डार जमालो दूर खडी"** आ-दिकी कहावतोंसे कटाक्ष करते रहैंगे. ऐसी अवस्थामें लाचार होकर **'जैनग्रन्थ-रत्नाकरका'** प्रतिमास ८ या दश फारमका अंक निकालना बंद किया जाता है और अपने अनुग्राहक ३९ ग्राहक महाशयोंसे प्रार्थना कियी जाती है कि इन दो वर्षोंमें जैनग्रन्थरत्नाकरकी ग्राहकीके संबंधसे जो जो हमारे अपराध हुये हों अवश्य ही क्षमा करेंगे।

यद्यपि इस समय प्रायः निरुत्साह होगये है तथापि उपाय किया जाता है यदि दो चार महीनोंमें किसी धनाढ्य महाशयकी मति पलट गई और हजार बारहसौकी सहायता मिलगई तब तौ यह शरीर फिर भी जिनवाणीमाताकी सेवामें विशेषरूपसे लग जायगा. अन्यथा अपने सांसारिक कार्यमें तौ लगाही है।

३–३–१९०६ इ.

क्षमाप्रार्थी—

जैनजातिका हितैषी दास—

पन्नालाल बाकलीवाल.